

# गद्य शिखर

पाठ्य-पुस्तक

बी.बी.ए./ बी.एच.एम./ एम.टी.ए./ बी.बी.ए. (एविएशन)

[ए.ई.सी.सी. भाषा तहत]

**B.B.A/B.H.M/M.T.A./B.B.A(Aviation)**

**[Language Under AECC]**

**For the year 2021-22 onwards**

**द्वितीय सेमिस्टर/II Semester**

संपादक

डॉ. रोहिणी बाई. एस.

डॉ. फरियाल शेख

डॉ. मोहम्मद अन्जरूल हक्

प्रसारांग

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु – 560 001

## **GADYA SHIKHAR:**

Edited by:

Dr. Rohini Bai. S

Dr. Fariyal Shaikh

Dr. Mohamed Anzarul Haq

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण –2021

Pages:

प्रधान संपादक

डॉ. शेखर

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु–560 001

## भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2021–22 शैक्षिक वर्ष से एन.ई.पी. पद्धति के अनुसार स्नतक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा है।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात् हिंदी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सकें कि साहित्य का विश्लेषण कैसे किया जाए, उसकी सराहना कैसे की जाए और दिए गए पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली-भाँति परिचित हो सकें। जैसे विज्ञान आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी है। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाजशास्त्री विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। एन.ई.पी. सेमिस्टर पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण किया गया है।

इस पृष्ठभूमि में हिन्दी-अध्ययन-मण्डल ने विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर के मार्गदर्शन में पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किया है।

संपादक मण्डल का विश्वास है कि यह गद्य संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

डॉ. लिंगराज गाँधी

कुलपति

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु—560 001

प्रधान संपादक की कलम से.....

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नये-नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एन.ई.पी. सेमिस्टर पद्धति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सम्पादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नयी पाठ्य पुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय डॉ. लिंगराज गाँधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

डॉ. शेखर

अध्यक्ष (बी.ओ.एस)

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु-560 001

# अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	भाषा का महत्व (साहित्यिक निबंध) —हरदेव बाहरी	1
2.	अग्नि की उड़ान (जीवनी) —ए.पी.जे. अब्दुल कलाम —अरूण तिवारी	11
3.	मेरी मास्को यात्रा (यात्रा वृत्तांत) —नगेन्द्र	25
4.	आध्यात्मिक पागलों का मिशन (व्यंग्यात्मक लेख) — हरिशंकर परसाई	40
5.	अलोपी (रेखाचित्र) —महादेवी वर्मा	47
6.	यहाँ रोना मना है (एकांकी) —ममता कालिया	63
7.	योग्यता और व्यवसाय का चुनाव (परामर्श) —माधवराव सप्रे	76



## 1. भाषा का महत्व

हरदेव बाहरी

**लेखक परिचय:**—डॉ.हरदेव बाहरी का नाम देश के विख्यात भाषा विज्ञानियों में गिना जाता है। उनका जन्म 1907 में हुआ। शिक्षा रावलपिंडी और लाहौर में हुई। उन्होंने भाषा विज्ञान में पंजाब से पी.एच.डी. और इलाहाबाद से डी.लिट् की उपाधि प्राप्त की। वे पंजाब, कुरुक्षेत्र और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक रहे। उन्होंने अनेक शब्दकोषों का संपादन और निर्माण किया। हिन्दी भाषा पर भी उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हैं।

**रचनाएँ:**— हिन्दी ग्रामीण बोलियाँ, हिन्दी: उद्भव विकास और रूप, शुद्ध हिन्दी, व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण, हिन्दी का सामान्य ज्ञान—दो भाग।

.....

भाषा एक ऐसा गुण है जिसके कारण मनुष्य पशु—पक्षियों से भिन्न और अलग है। पशु—पक्षी बोलते तो हैं, पर उनकी आवाजों को भाषा नहीं कह सकते क्योंकि न उनमें सार्थक शब्द होते हैं और न वाक्य। भाषा की यह प्रकृति है कि वह संस्कृति के विकास के साथ विकसित होती रहती है और देश—काल के भेद से बदलती रहती है। चीन की भाषा भारत की भाषा से भिन्न है और केरल की मलयालम, महाराष्ट्र की मराठी से भिन्न है, परन्तु इन सब जगहों के कौवे, गधे, मुर्गे या कबूतर एक—सी बोली बोलते हैं। संस्कृत और हिन्दी में अथवा पुरानी तमिल और आधुनिक तमिल में बहुत अन्तर है। किसी भी देश की पुरानी भाषा को उस देश की आधुनिक भाषा नहीं समझ पाते, क्योंकि कालभेद से दोनों

में बहुत अन्तर पैदा हो गया। परन्तु, पशु-पक्षियों की बोलियों में कोई विकास या परिवर्तन नहीं होता। वे जो आवाजें आज करते हैं, सैंकड़ों-हजारों वर्ष पहले उनके पुरखे यही आवाजें किया करते थे। भाषा मनुष्य की विशिष्ट संपत्ति है, किसी अन्य जीव की नहीं।

मनुष्य मननशील प्राणी है। भाषा के बिना कोई चिन्तन-मनन नहीं कर सकता। भाषा के द्वारा ही विचार का तारतम्य बनता है। जाग्रत अवस्था में ही नहीं, स्वप्न-अवस्था में भी हमारे विचार चलते रहते हैं, और उनका माध्यम भाषा ही होती है। जितनी समृद्ध और उन्नत भाषा होती है, उतने ही समृद्ध और उन्नत विचार होते हैं। जीव विज्ञानी बताते हैं कि पशु-पक्षी का मन नहीं होता इसलिए उनकी मनन-शक्ति भी नहीं होती। उनमें सोच-विचार नहीं के बराबर होता है। वह न अतीत की चिन्ता कर सकता है न भविष्य की। उसके लिए तो वर्तमान ही वर्तमान है, अपितु वर्तमान का भी शायद एक क्षण। उस क्षण के लिए उसके पास भूख, प्यास, भय और वासना की अभिव्यक्ति के लिए थोड़ी-सी ध्वनियाँ हैं।

भाषा के माध्यम से ही मनुष्य समाज और सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करता है। भाषा के द्वारा हम पहले तो अपरिचित को भी परिचित बना लेते हैं, फिर उसके साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं, मिल-बैठकर बातें करते हैं, आपस में सुख-दुःख बाँटते हैं और भावों तथा विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इसी से समाज की रचना हो जाती है। फिर हम अपने लाभ, अपनी सामूहिक उन्नति के उपाय सोचते हैं, कुछ नियम तय करते हैं—सब भाषा के माध्यम से। इस प्रकार सामाजिकता के साथ संस्कृति का विकास होता है। पशु-पक्षी न व्यवस्थित समाज बना सकते हैं



न संस्कृति, क्योंकि उनकी कोई भाषा नहीं है। आप चींटियों, मधुमक्खियों, कबूतरों या भेड़ियों का समाज देखते हैं, परन्तु उस समाज की कोई व्यवस्था नहीं है, उसमें कोई विकास नहीं होता है। चींटियाँ युग-युग से खाने के कण जमा करती आ रही हैं और मीठी चीज़ पर चिपकती रहती हैं। वे यह नहीं सोच पाई हैं कि वर्षा जल उनके बिल में घुस आए तो उससे क्या बचाव हो सकता है या ऐसी जुगत हो जाए कि गुड़ भी खा सकें और चिपकने भी न पाएँ। मधुमक्खियाँ अपने छत्ते और शहद की रक्षा के लिए कोई निराला या वैज्ञानिक उपाय नहीं ढूँढ पाई हैं। इसीलिए शहद का संग्रह तो वे करती रहती हैं और उसके उपभोग करने के लिए छत्ता तोड़कर शहद ले जाने वाला मनुष्य आ जाता है। भाषा के बिना विकास संभव नहीं है।

भाषा और सामाजिक व्यवस्था का घनिष्ठ संबंध है। हमारी भाषा में साला और बहनोई दो अलग-अलग शब्द हैं क्योंकि साले और बहनोई से हमारा संबंध, हमारा लेन-देन, हमारा व्यवहार भिन्न प्रकार का होता है। अंग्रेजी में दोनों के लिए एक ही शब्द है, वह भी बनावटी। उससे संबंधों का निश्चय नहीं हो पाता। पाश्चात्य समाज में इतना बिखराव है कि साला या बहनोई कोई संबंधी नहीं माना जाता। अंग्रेजी में चाचा, ताया, मामा, फूफा, मौसा.....सब के लिए एक ही शब्द अंकल। हमारी भाषा में अलग-अलग शब्द इसलिये हैं कि इन व्यक्तियों का हमारे परिवारों में अपना-अपना विशिष्ट स्थान है और उनके साथ हमारे व्यवहारों, कर्तव्यों और अधिकारों का विशिष्ट महत्व है।

भारतीय भाषाओं से पता चलता है कि इस देश की संस्कृति मुख्यतः धार्मिक और आध्यात्मिक है। धर्म की जो व्याख्या हमारे

नेताओं ने की है वह किसी और देश में नहीं मिलती। धर्म के दस लक्षण बताए गए हैं—धर्म, क्षमा, संयम, चोरी न करना, शौच स्वच्छता, इन्द्रिय—निग्रह, बुद्धि का विकास, विद्या, सत्य और अक्रोध। ऐसी परिभाषा किसी देश में न मिलेगी जो शाश्वत और सर्वांगीण मानव मूल्यों को धर्म माने। हमारी भाषाओं में योग, ध्यान, समाधि आदि से संबंधित शब्दावली है, उसकी अपनी विशेषता है। यूरोपीय भाषाओं से पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति का परिचय मिलता है। इनमें भौतिक विज्ञानों और भौतिक सुख—सुविधा को भरपूर स्थान मिला है। इस्कीमों की भाषा में मछली, रेडियर और बर्फ से संबंधित शब्दों की विविधता और प्रचुरता उनके जीवन की सूचना देती है। अरबी में ऊँट के बारे में और संस्कृत में गाय के बारे में भरपूर शब्द—भंडार है। इससे भिन्न—भिन्न जातियों की सांस्कृतिक आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त होता है। किसी जाति की भाषा उसके सांस्कृतिक संपर्कों की कहानी भी बताती है। द्राविड़ भाषाओं में संस्कृत के शब्द और संस्कृत अथवा आधुनिक भारतीय भाषाओं में द्राविड़ शब्द कब से और क्यों हैं ? इससे उत्तर और दक्षिण भारत के प्रागैतिहासिक और इतिहास के अनेक युगों के अन्तः संबंधों की सूचना मिलती है और देश की अखण्डता तथा एकता का प्रमाण मिलता है। भारत में अनेक जातियाँ आई समा गईं। नीग्रो, यूनानी, ईरानी, कुशान, यूची, हूण, अरब आदि अनेक लोग आए और सब हमारी भाषाओं पर हलकी या भारी छाप छोड़ गए। एक बार फिर हमारा संपर्क अरब और ईरान से आने वाली जातियों से हुआ जो यहाँ आकर बस गईं। यह संपर्क दीर्घ काल तक रहा। भारत की सभी भाषाओं पर उनके शब्दों, प्रयोगों और मुहावरों का प्रभाव पड़ा। दो भाषाओं के साथ दो संस्कृतियों का मेल भी हुआ। फिर यूरोपीय जातियाँ आईं

तो उनकी भाषाओं ने अपना-अपना प्रभाव डाला। उच्च भाषा के थोड़े से शब्द, पुर्तगाली और फ्रेंच के कुछ अधिक एवं अंग्रेजी के सबसे अधिक शब्द और प्रयोग भारतीय भाषाओं में धुल-मिल गए, विशेषतः न्याय, शिक्षा, साहित्य, विज्ञान, खान-पान और सामान्य व्यवहार में। भाषा में इतिहास के कई अध्याय पड़े हैं। भाषा के आधार पर हम किसी युग के इतिहास का निर्माण कर सकते हैं। उस युग की रीतियों, कुरीतियों, धारणाओं, लोक व्यवहार और सभ्यता का ज्ञान भाषा ही कराती है चाहे वह पत्थरों पर खुदी हो, पुरानी पुस्तकों में पड़ी हो और चाहे लोक में प्रचलित हो।

संस्कृति के विकास, प्रचार और संरक्षण के लिए भाषा एकमात्र साधन है। भाषा ने हमारे पूर्वजों के अनुभवों, उनकी उपलब्धियों, त्रुटियों और अभावों का लेखा-जोखा तैयार कर रखा है। उससे परिचित होकर हम आगे बढ़ने की योजनाएँ बनाते हैं। यदि उनका रिकार्ड हमारे पास न हो तो हम सारे संचित ज्ञान-विज्ञान से वंचित रह जाएँ। पिछली पीढ़ी ने साहित्य, कला, मानविकी, संस्कृति, गणित और विज्ञान के क्षेत्र में जो कुछ कर रखा है उसे पहले जानकर ही तो हम उससे अपना अवदान जोड़ सकते हैं। यदि भाषा न हो तो हर पीढ़ी को वहीं से शुरुआत करनी पड़े जहाँ से गुफा में रहने वाले हमारे आदि पूर्वजों ने की थी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी जो कुछ जुड़ता है, उसका माध्यम भाषा ही है। भाषा के द्वारा हम अनेक देशों और वहाँ के निवासियों से भी कुछ सीखते रहते हैं। भाषा ही विचारों और भावों के ग्रहण और प्रसारण का साधन है।

भाषा वह शक्ति है जो मुरदा दिलों में भी जान फूँक देती है। नेता लोग भाषणों द्वारा ही जनता को प्रेरणाएँ देते हैं।

सेनापति अपनी ओजपूर्ण भाषा से सिपाहियों को ऐसा प्रोत्साहित कर देते हैं कि वे अपनी जान तक लड़ा देते हैं। अध्यापक और विद्वान भाषा द्वारा ही अपने ज्ञान का प्रसार करते हैं। धर्म प्रचारक भी अपने उपदेशों से अपने मतों का संदेश दूसरों तक पहुँचाते हैं। भाषा में दिलों को जोड़ने की अद्भुत शक्ति है। पालि भाषा ने भारत, श्रीलंका, बर्मा, चीन, जापान और तिब्बत के बौद्धों को एक सूत्र में बाँधे रखा है। संस्कृत के नाते भारत के अनेक प्रदेशों के रहने वाले एकता और बंधुत्व का अनुभव करते हैं। यह विश्व भर के हिन्दुओं के संस्कारों की भाषा है। जिससे वे एक संस्कृति से जुड़े हुए हैं। अरबी ने सारे संसार के मुसलमानों के भाईचारे और सामाजिक संगठन को दृढ़ किया है। यूरोपीय भाषाओं के प्रचार प्रसार के साथ ईसाई धर्म का प्रचार जुड़ा रहा है। भाषा के द्वारा बहुत से धर्म-कर्म के कार्य होते हैं, जैसे-भजन, कीर्तन, संध्या, उपासना आदि। हमारी पूजा भाषा से होती है और पाठ का तो अर्थ ही है भाषा का पाठ। हमारे संस्कार भाषा से ही सम्पन्न होते हैं।

पति पत्नी को दाम्पत्य-सूत्र में बाँधने वाली भाषा ही है। मुसलमान भाषा में ही नमाज पढ़ता है, दुआ माँगता है और अल्लाह के गुण गाता है। ईसाई, सिख, पारसी, बौद्ध, जैन सबकी प्रार्थनाओं, पूजा-विधियों, रीति-रिवाजों का माध्यम भाषा है। भाषा न हो तो हमारे ये आधारभूत धार्मिक ग्रन्थ हमें कैसे प्राप्त होते? वेद, शास्त्र, उपनिषद्, गीता, पुराण, कुरआन, हदीस, बाइबल, गुरु ग्रन्थ साहब, जेंद, धम्म पिट्टक और जैन आगम सब भाषा में हैं और भाषा के कारण सुरक्षित हैं। वास्तव में विश्व का सारा साहित्य, हमारे ऋषियों, संतों, महात्माओं, बलियों, पीर-पैगम्बरों,

गुरुओं, आचार्यों और कुल धार्मिक नेताओं की वाणियाँ भाषा ही के माध्यम से हम तक पहुँच पाई हैं।

भाषा ने ही हमारी बुद्धि और प्रतिभा को विकसित किया है। इसी ने कवि, महर्षि, योगी, दार्शनिक और वैज्ञानिक बनाए इसी को पाकर मनुष्य विश्व की सारी संपत्तियों, प्रकृति के समस्त वरदानों और लोक-परलोक की सिद्धियों का स्वामी बना है। भाषा ने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी बना दिया है।

भाषा एक जादू है। किसी से आदर या चापलूसी के दो शब्द कह दीजिए, वह तुम्हारा हो जाएगा। मीठी-मीठी बातों से आप किसी को मोह सकते हैं। मधुर भाषण से सबके दिलों की कली खिल जाती है। जैसे हिरन संगीत की सुरीली तान सुनकर मस्ती में अपनी सुध-बुध खो बैठता है, वैसे ही हर आदमी चिकनी चुपड़ी बातों में आ जाता है। आप उससे अपना काम निकाल सकते हैं। भाषा जीवन में सफलता की कुंजी है। भाषा का एक दूसरा रूख भी है। तिरस्कार का एक शब्द अपने परम प्रिय व्यक्ति को अप्रिय बना देता है। एक कर्कश वाक्य या एक चुभती-चुटीली बात मित्र को शत्रु बना देती है उसकी चुभन बंदूक की गोली से ज्यादा मार करती है। तलवार का घाव भर सकता है, परन्तु कड़वे-कसैले बोलों का घाव उम्र भर हरा रहता है। गंदी और कड़वी वाणी जहरीली जड़ी के समान है जो अपनों को पराया बना देती है, भाई-भाई में फूट डाल देती है और घर के घर नष्ट कर देती है। आप अंधे को अंधा, काने को काना या लँगड़े को लँगड़ा कहकर देखें। उसे बुरा लगेगा। वह गाली दे, झगड़ा करे, चिल्लाए-सब उचित है। आप एक गली से जा रहे हैं। उधर से आते हुए एक आदमी के कंधे से आपका कंधा भिड़ जाता है। ऐसी

स्थिति में यदि वह कहता है—अरे, देखकर चलो, क्या अंधे हो गये हो? —तो आप भी उसे बुरा—भला कह देने को मजबूर हो जाएँगे। लड़ाई छिड़ जाएगी। यदि वह कहता है—क्षमा करें, गलती हो गई, मेरा ध्यान कहीं और था— तो आप नरमी से कह देंगे— कोई बात नहीं। इस प्रकार भाषा मानवीय संबंधों को जोड़ती भी है और तोड़ती भी है।

भाषा सभ्य और असभ्य, शिक्षित और अशिक्षित की पहचान कराती है। शिक्षित और सभ्य व्यक्ति की भाषा—शैली दूसरों से भिन्न होती है। उसका उच्चारण, उसका शब्द—चयन, उसके मुहावरों और वाक्यों का सटीक प्रयोग साफ बता देता है कि वह व्यक्ति शिष्ट और पढ़ा—लिखा है। इसके विपरीत एक असभ्य और गँवार आदमी का भाषा का स्तर कितना गिरा हुआ होता है, यह आप भली—भाँती जानते हैं।

व्यावहारिक जीवन में कोई ऐसा कार्य या व्यवसाय नहीं है जो भाषा के बिना चल सके। व्यापारी अच्छी मीठी और विश्वासपूर्ण शब्दों से ग्राहक को प्रभावित कर लेता; वकील यथातथ्य, तर्क युक्त और जोरदार भाषा से मुकद्दमा जीत जाता है, डाक्टर रोगी को आश्वासन देकर, उसके साथ जरा हँसी—मज़ाक की बात करके उसके आधे रोग को हर लेता है, अध्यापक का तो हथियार ही भाषा है, यही उसके कार्य का मुख्य साधन है। भाषा से हमारे सारे प्रयोजन सिद्ध होते हैं। इसी से हम माँ के दूध के साथ पलते हैं, इसी के विकास के साथ हम बड़े होते हैं, इसी से हम धन—उपार्जन करते हैं, और इसी से हम घर—बाहर के सारे काम करते हैं। भाषा लोक—व्यवहार का साधन है। आप ही सोचिए कि यदि भाषा न हो तो आप अपनी

दिनचर्या कैसे निभा पाएँगे। दो-चार दिन मौन रहकर देखिए। पहले ही आपके यहाँ अतिथि आ गए हैं। आप उनसे बात तक नहीं करेंगे। साथ के कमरे में बच्चे हुल्लड़ मचा रहे हैं, लड़-भिड़ रहे हैं। एक बच्चे ने पत्थर मारकर आपकी खिड़की का शीशा तोड़ दिया है। आप म नही मन उन्हें कोस रहे हैं। याद रहे कि आपकी कुढ़न और झुँझलाहट भी भाषा में हो रही है। घर में सब्जी-तरकारी नहीं है और आप प्रतिदिन ताजी सब्जी लाया करते हैं, परन्तु आप बाजार जाकर क्या करेंगे ? मोल-भाव कैसे पूछेंगे ? आपको कितनी सब्जी चाहिए कैसे बताएँगे ? जब ये छोटे-छोटे काम बिना भाषा के सम्पन्न नहीं हो पाते तो बड़े-बड़े कार्यों को कैसे पूरा किया जाएगा ? भाषा के बिना पशु-पक्षियों का काम चल जाता है क्योंकि उनकी आवश्यकताएँ सीमित हैं, उनके सामाजिक व्यवहार नहीं हैं, उनमें चिन्तन-मनन नहीं है। मनुष्य का जीवन-निर्वाह इसके बिना नहीं हो सकता।

देखा गया है कि जो विद्यार्थी भाषा में प्रवीण होते हैं वे दूसरे विषयों में भी सफल रहते हैं। जो भाषा पर अधिकार पा लेते हैं वे किसी विषय की पुस्तक को अच्छी तरह समझ लेते हैं और अपने विषय को सुचारु रूप में समझा सकते हैं। जिनकी भाषा कमजोर होती है उनका ज्ञान अधूरा रह जाता है और वे जो थोड़ा-बहुत जानते हैं उसे ठीक तरह अभिव्यक्त नहीं कर पाते। यदि किसी की भाषा की समझ कम है तो किसी विषय में प्रगति सम्भव नहीं होती। मौखिक परीक्षा व साक्षात्कार (इण्टरव्यू)में परखा जाता है कि परीक्षार्थी या अभ्यर्थी की बुद्धि कितनी परिपक्व है, उसका ज्ञान कितना गहरा या छिछला है या उसकी संस्कृति का स्तर क्या है। यह सब मुख्यतः बातचीत से

अर्थात् भाषा ही से जाना जाता है। योग्य और अयोग्य की पहचान उसकी भाषा से होती है। भले और बुरे की पहचान भी उसकी भाषा से होती है। ठीक ही कहा गया है—

**भले—बुरे सब एक सौं जब लौं बोलत नाहिं।**

**जान पड़त हैं काक पिक ऋतु बसन्त के माहिं।।**

• • • • •



## 2. अग्नि की उड़ान

डॉ. ए.पी.जे.अब्दुल कलाम

—अरुण तिवारी

**लेखक परिचय:**—विश्व स्तर पर परमाणु-सशक्त प्रदेशों में एक विशेष स्थान दिलवाने का श्रेय—प्राप्त अबुल पाकिर जैनुलाब्दीन अब्दुल कलाम का जन्म 16 अक्टूबर, 1931 को तमिल नाडु में एक साधारण मुसलमान परिवार में हुआ। अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए इन्होंने अपनी शिक्षा समाप्त की। इसके पश्चात् विदेश से अनेक आकर्षक प्रस्तावों को ठुकराते हुए इन्होंने हि.ए.लि., डी. आर.डी.ओ तथा इस्रो में वैमानिकी अभियंता के रूप में सेवारत रहते हुए देश-प्रेम का परिचय दिया है। प्रक्षेपास्त्र (Ballistic Missile) तकनीक तथा अंतरिक्ष रॉकेट तकनीक के विकास में अपने अभूतपूर्व योगदान के कारण इन्हें “मिसाइल मैन ऑफ इंडिया” की उपाधि से अभिहित किया गया। सन् 1998 ई. में भारत द्वारा किए गए पोखरण-2 परमाणु परीक्षा में केन्द्रीय भूमिका निभाई। सन् 2002-2007 तक भारत के 11 वें राष्ट्रपति के पद पर सेवारत रहे तथा “जनता के राष्ट्रपति” कहलाए। संगीत एवं धर्म शास्त्रों में इनकी गहरी पैठ है। सन् 1981 ई. को पद्मभूषण सन् 1990 ई. को पद्मविभूषण तथा 1997 को भारतरत्न की सर्वोत्कृष्ट उपाधियों से सम्मानित किया गया।

इन्होंने तीन पुस्तकें लिखी हैं जो मूलतः अंग्रेजी में हैं— विंग्स ऑफ फायर आत्मकथा, इग्नाइटेड, माइन्ड्स तथा इंडिया 2020। इन तीनों में इनकी आत्मकथा विंग्स ऑफ फायर हिन्दी में अग्नि की उड़ान नाम से अनूदित है।

इनके व्यक्तित्व की सरलता एवं सादगी, धार्मिक सहिष्णुता एवं मानवीय मूल्यों का प्रतिपादन युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा-स्रोत बनकर उपस्थित होता है।

**अरूण तिवारी:** अरूण तिवारी जी हैदराबाद में स्थित डी.आर.डी. एल. में डॉ. अब्दुल कलाम के निर्देशन में एक दशक से अधिक समय तक कार्य किया है। संप्रति वे हैदराबाद में स्थित हृदयतंत्र प्रौद्योगिकी संस्थान (सी.वी.टी.आई) के निदेशक हैं। जहाँ वे स्वदेशी रक्षा तकनीक के प्रयोग से कम लागत की चिकित्सा तकनीकियों को विकसित करने में लगे हैं। डॉ. कलाम के विचारों की गहराई एवं व्यापकता से सम्मोहित तिवारी जी के लिए इस पुस्तक का लेखन कार्य एक तीर्थ-यात्रा के समान था।

.....

रामनाथपुरम् के श्वाटर्ज हाई स्कूल में मन लग जाने के बाद मेरे भीतर का पंद्रह साल का किशोर बाहर निकल पड़ा। मेरे एक शिक्षक अयादुरै सोलोमन उन उत्सुक छात्रों के लिए आदर्श मार्गदर्शक थे जिनके समक्ष उस समय संभावनाओं और विकल्पों की अनिश्चितता थी। वह बहुत ही स्नेही, खुले दिमागवाले व्यक्ति थे और छात्रों का उत्साह बढ़ाते रहते थे। इससे छात्र बहुत ही सुखद महसूस करते थे। सोलोमन कहा करते थे कि एक कुशल शिक्षक से कमजोर छात्र जो सीख जाता है, उसकी तुलना में एक होशियार छात्र कमजोर शिक्षक से कहीं ज्यादा सीख सकता है।

रामनाथपुरम् में रहते हुए अयादुरै सोलोमन से मेरे संबंध एक गुरु—शिष्य के नाते से हटकर काफी प्रगाढ़ हो गए थे। उनके साथ रहते हुए मैंने यह जाना कि व्यक्ति खुद अपने जीवन की घटनाओं पर काफी असर डाल सकता है। अयादुरै सोलोमन कहा करते थे—जीवन में सफल होने और नतीजों को हासिल करने के लिए तुम्हें तीन प्रमुख शक्तिशाली ताकतों को समझना चाहिए—इच्छा, आस्था और उम्मीदें। श्री सोलोमन मेरे लिए बहुत ही श्रद्धेय बन गए थे। उन्होंने ही मुझे सिखाया कि मैं जो कुछ भी चाहता हूँ पहले उसके लिए मुझे तीव्र कामना करनी होगी, फिर निश्चित रूप से मैं उसे पा सकूँगा। वे कहा करते थे— निष्ठा एवं विश्वास से तुम अपनी नियति बदल सकते हो।.....

बात उस समय की है जब मैं चौथी फार्म में था। सारी कक्षाएँ स्कूल के अहाते में अलग—अलग झुंडों के रूप में लगा करती थीं। एक दिन मेरे गणित के शिक्षक रामकृष्ण अय्यर एक दूसरी कक्षा को पढ़ा रहे थे। अनजाने में ही मैं उस कक्षा से होकर निकल गया। तुरंत ही एक प्राचीन परंपराओं तानाशाह गुरु की तरह रामकृष्ण अय्यर ने मुझे गरदन से पकड़ा और भरी कक्षा के सामने मुझे बेंत लगाए। कई महीनों बाद जब गणित में मेरे पूरे नंबर आए तब रामकृष्ण अय्यर ने स्कूल की सुबह की प्रार्थना में सबके सामने यह घटना सुनाई— “मैं जिसकी बेंत से पिटाई करता हूँ वह एक महान् व्यक्ति बनता है। मेरे शब्द याद रखिए, यह छात्र विद्यालय और अपने शिक्षकों का गौरव बनने जा रहा है।” उनके द्वारा की गई यह प्रशंसा क्या एक भविष्यवाणी थी ?

श्रवाटर्ज हाई स्कूल से शिक्षा पूरी करने के बाद मैं सफलता हासिल करने के प्रति आत्मविश्वास से सराबोर छात्र था। मैंने एक

क्षण भी सोचे बिना और आगे पढ़ाई करने का फैसला कर लिया। उन दिनों हमें व्यावसायिक शिक्षा की संभावनाओं के बारे में कोई जानकारी तो थी नहीं। उच्च शिक्षा का सीधा सा अर्थ कॉलेज जाना समझा जाता था। सबसे नजदीक कॉलेज तिरुचिरापल्ली में था। उन दिनों इसे तिरुचिनोपोली कहा जाता था और संक्षेप में 'त्रिची'।

सन् 1950 में इंटरमीडिएट की पढ़ाई के लिए मैंने त्रिची के सेंट जोसेफ कॉलेज में दाखिला ले लिया।.....

मैं सौभाग्यशाली था कि सेंट जोसेफ कॉलेज में मुझे फादर टी.एन. सेक्युरिया जैसे शिक्षक मिले। वे हमें अंग्रेजी पढ़ाते थे और साथ ही हमारे होस्टल वार्डन भी थे। तीन मंजिले होस्टल में हम करीब सौ छात्र रहते थे। फादर सेक्युरिया रोजाना रात को हाथ में 'बाइबिल' लिये हुए हर लड़के से मिलने आते थे। उनकी ऊर्जा और धैर्य आश्चर्यजनक था। वे हमेशा दूसरों का खयाल रखनेवाले व्यक्ति थे और हर छात्र की पल-पल की जरूरतों को पूरा करते थे। उनके निर्देश पर ही दीपावली के अवसर पर हमारे होस्टल का इंचार्ज (ब्रदर) और मेस के लोग सभी छात्रों के कमरे में जा-जाकर पवित्र स्नान के लिए उन्हें तिल का तेल देते।

मैं सेंट जोसेफ कॉलेज में चार साल रहा। होस्टल में मेरे साथ कमरे में दो लड़के और थे। एक श्रीरंगम के रूढ़िवादी आयंगर परिवार से था और दूसरा केरल का सीरियाई ईसाई था। हम तीनों हमेशा साथ रहते थे और बहुत ही अच्छा समय कटता था। जब मैं कॉलेज के तीसरे साल में था तब मुझे होस्टल में शाकाहारी मेस का सचिव बना दिया गया। एक रविवार को हमने कॉलेज के प्रमुख फादर कलाथिल को दोपहर के भोज पर

आमंत्रित किया। भोज में शामिल व्यंजनों में वे चीजें भी शामिल थीं जो पारंपरिक रूप से हमारे परिवारों में बनाई जाती थीं। इसका नतीजा न सिर्फ अप्रत्याशित रहा बल्कि फादर कलाथिल ने हमारी कोशिशों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। हमने उनके साथ बहुत ही आनंद के क्षण गुजारे। उन्होंने हमारे साथ बच्चे की तरह निष्कपट एवं आत्मीयता से बातें कीं। हम सबके लिए यह यादगार घटना थी।

सेंट जोसेफ के मेरे शिक्षक कांची परामाचार्य के सच्चे अनुयायी थे, जो देने में ही जीवन का सच्चा आनंद है, मत के प्रणेता थे। मेरे गणित के शिक्षकों, प्रो. थोथाथ्री आयंगर और प्रो. सूर्यनारायण शास्त्री, के कॉलेज परिसर में साथ-साथ टहलने की जीवंत स्मृति मेरे लिए हमेशा प्रेरणा का स्रोत बनी रही।

जब मैं सेंट जोसेफ कॉलेज के अंतिम वर्ष में था तभी मुझे अंग्रेजी साहित्य पढ़ने का चस्का लगा। मैंने टॉल्सटॉय, स्कॉट और हार्डी को पढ़ना शुरू किया। उसके बाद दर्शन की ओर झुकाव हुआ तथा उसपर काम भी किया। यह वह समय था जब भौतिकशास्त्र में मेरी गहरी रुचि हो गई थी।

सेंट जोसेफ के मेरे भौतिकी के शिक्षकों, प्रो. चिन्ना दुरै और प्रो. कृष्णमूर्ति ने परमाणवीय भौतिकी के अध्यायों में मुझे पदार्थों के अर्द्धजीवन काल की अवधारणा और उनके रेडियोएक्टिव क्षय के बारे में ज्ञान कराया। रामेश्वरम् में मेरे विज्ञान के शिक्षक शिव सुब्रह्मण्य अय्यर ने मुझे कभी यह नहीं बताया था कि परमाणु अस्थिर होते हैं और एक निश्चित समय के बाद ये दूसरे परमाणु में परिवर्तित हो जाते हैं। यह सब मैं पहली बार ही जान रहा था। लेकिन जब उन्होंने मुझे हर पल कड़ा परिश्रम करने की बात कही,

क्योंकि सभी यौगिक पदार्थों का क्षय अपरिहार्य है, तो मुझे लगा, क्या वे एक ही तथ्य के बारे में बात नहीं कर रहे थे। मुझे आश्चर्य हुआ कि कुछ लोग विज्ञान को इस तरह से क्यों देखते हैं, जो व्यक्ति को ईश्वर से दूर ले जाए। जैसा कि मैंने इसमें देखा कि हृदय के माध्यम से ही हमेशा विज्ञान तक पहुँचा जा सकता है। मेरे लिए विज्ञान हमेशा आध्यात्मिक रूप से समृद्ध होने और आत्मज्ञान का रास्ता रहा।

मैं ब्रह्मांड विज्ञान के बारे में खूब उत्सुकता से किताबें पढ़ा करता हूँ तथा खगोलिय पिंडों के बारे में अधिक—से—अधिक जानने में मुझे बहुत आनंद आता है। कई मित्र मुझसे अंतरिक्ष उड़ानों से संबंधित प्रश्न पूछ लेते हैं और कई बार चर्चा ज्योतिष में चली जाती है। ईमानदारी से मैं वाकई अभी तक इस बात का कारण नहीं समझ पाया हूँ कि क्यों लोग ऐसा मानते हैं कि हमारे सौर परिवार के दूरस्थ ग्रहों का जीवन की रोजमर्रा की घटनाओं पर प्रभाव पड़ता है। एक कला के रूप में मैं ज्योतिष के खिलाफ नहीं हूँ। लेकिन अगर विज्ञान की आड़ में इसे गलत तरीके से स्वीकार किया जाता है तो मैं इसे नहीं मानता। मुझे नहीं पता कि ग्रहों, नक्षत्रों, तारामंडलों और यहाँ तक कि उपग्रहों के बारे में इन मिथकों ने कैसे जन्म लिया। ब्रह्मांडीय पिंडों की अत्यधिक शुद्ध गति की जटिल गणनाओं में हेर—फेर करके यदि व्यक्तिपरक नतीजे निकाले जाएँ तो ये मुझे अतार्किक लगते हैं। जैसा मैं देखता हूँ कि पृथ्वी ही सबसे शक्तिशाली एवं ऊर्जावान ग्रह है। जॉन मिल्टन ने इसे पैराडाइज लॉस्ट पुस्तक—VII में बड़ी ही खूबसूरती से व्यक्त किया है—

“होने दो सूर्य को

दुनिया का केंद्र  
और सितारों की धुरी।  
मेरी यह धरती  
कितनी गरिमामय  
धीमे—धीमे घूमे  
तीन अलग धुरियों पर।”

इस ग्रह पर आप जहाँ भी जाते हैं वहाँ गति और जीवन है, वैसे ही निर्जीव वस्तुओं जैसे चट्टानों, धातुओं, लकड़ी, चिकनी मिट्टी में भी आंतरिक गतिशीलता विद्यमान है।.....

सेंट जोसेफ कॉलेज में जब मैंने बी.एस.सी. में दाखिला लिया था तब मैं उच्च शिक्षा के किसी और विकल्प के बारे में बिलकुल अनभिज्ञ था। न ही भविष्य के अवसरों के बारे में मेरे पास वे सूचनाएँ थीं जो एक विज्ञान के विद्यार्थी के पास होनी चाहिए। बी.एस.सी. के बाद ही मुझे यह महसूस हो गया था कि भौतिकी मेरा विषय नहीं है। मुझे अपना सपना पूरा करने के लिए इंजीनियरिंग में जाना था। इंजीनियरिंग में तो मैं इंटरमीडिएट की पढ़ाई पूरी करके भी जा सकता था। दुर्घटना से देर भली—मैंने खुद को ही समझाया और मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी) में दाखिले के लिए चक्कर लगाने शुरू किए। उस समय दक्षिण भारत में तकनीकी शिक्षा के लिए मशहूर यह एक विशिष्ट संस्थान था।

संस्थान के चयनित उम्मीदवारों की सूची में मेरा नाम तो आ गया, लेकिन इस प्रसिद्ध संस्थान में दाखिला काफी खर्चीला था।

इसके लिए करीब एक हजार रूपए की जरूरत थी और मेरे पिताजी के पास इतना पैसा कभी हुआ ही नहीं। ऐसे वक्त में मुझे पढ़ाने के लिए मेरी बहन जोहरा आगे आई और मेरी फीस के लिए उन्होंने अपने हाथों के कड़े तथा हार गिरवी रख दिए। मुझे शिक्षित देखने का उनमें जो दृढ़ संकल्प था और मेरी योग्यताओं एवं क्षमताओं को लेकर उनका जो भरोसा था, वह मुझे गहराई तक छू गया। मैंने अपनी कमाई से ही उनके गिरवी जेवरों को छुड़ाने की ठानी। उस समय मेरे सामने पैसे कमाने का सिर्फ यही रास्ता था कि मैं कड़ी मेहनत करूँ और छात्रवृत्ति हासिल करूँ। मैं पूरी मेहनत एवं लगन से पढ़ाई में जुट गया।

एम.आई.टी. में मुझे सबसे ज्यादा उन दो विमानों ने आकर्षित किया जो वहाँ उड़ान संबंधी मशीनों की विभिन्न कार्य प्रणालियाँ समझाने के लिए प्रदर्शन के तौर पर रखे गए थे। इन विमानों के प्रति मुझे गहरा लगाव हो गया। दूसरे छात्रों के होस्टल लौट जाने के बाद भी मैं उनके पास बहुत देर तक बैठा रहता। एक पक्षी की तरह स्वतंत्र रूप से आकाश में विचरण करने की मनुष्य की इच्छा की मन-ही-मन प्रशंसा करता रहता।

पहला साल पूरा कर लेने के बाद जब मुझे एक विशेष विषय का चुनाव करना था तो मैंने वैमानिकी (एयरोनॉटिकल) इंजीनियरिंग की दिशा चुनी और इसे ही अपना विशेष विषय बनाया। अब मेरे दिमाग में लक्ष्य एकदम स्पष्ट था—मुझे विमान उड़ाना था। अपने भीतर आग्रहिता की कमी के बारे में जानते हुए भी मैंने यह निश्चय कर लिया था। शुरू से ही विनम्र स्वभाव होने की वजह से मुझमें यह कमी थी कि मैं आग्रही या दावा करनेवाला नहीं था। इसी दौरान मैंने अलग-अलग तरह के लोगों से संवाद



कायम करने की कोशिशें कीं। इस दौरान मुझे कई बाधाएँ आई, निराशा हुई और मन में भटकाव आया; लेकिन पिताजी के प्रेरणास्पद वाक्यों ने मुश्किलों के इस दौर में भी मुझे डिगने नहीं दिया। वे कहते थे— वह, जो दूसरों को समझता है, वही सीख लेता है। लेकिन बुद्धिमान वह है जो खुद स्वयं को जान लेता है। बुद्धि के बिना सीखा गया ज्ञान किसी काम का नहीं होता।’

एम.आई.टी. में पढ़ाई के दौरान तीन शिक्षकों ने मेरी अप्रकट सोच को मूर्त रूप दिया। उन तीनों के संयुक्त योगदान से ही वह नींव पड़ी, जो आगे चलकर मेरा व्यावसायिक कार्यक्षेत्र बनी। वे तीन शिक्षक थे—प्रो. स्पांडर, प्रो. के.ए.वी.परदलाई और प्रो. नरसिंह राव। इनमें प्रत्येक शिक्षक अलग-अलग क्षेत्रों में विलक्षण व्यक्तित्व के धनी थे। वे तीनों ही अपनी प्रतिभा एवं अथक उत्साह से छात्रों की बौद्धिक भूख शांत करने के काम में लगन से लगे रहते थे।

प्रो. स्पांडर ने मुझे तकनीकी वैमानिकी गतिकी विषय पढ़ाया। वे ऑस्ट्रिया के थे और वैमानिकी इंजीनियरिंग का उनको खासा अनुभव था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान वह नाजियों द्वारा बंदी बना लिये गए थे और उन्हें एक नजरबंद शिविर में कैद रखा गया था। स्वाभाविक था कि जर्मनों के प्रति उनमें घृणा भर गई। संयोग से वैमानिकी विभाग के प्रमुख एक जर्मन व्यक्ति—प्रो. वॉल्टर रेपेंथिन थे। उस समय एम.आई.टी. के डायरेक्टर डॉ. कुर्त टैंक हुआ करते थे। वे वैमानिकी इंजीनियरिंग के क्षेत्र में एक जानी-मानी हस्ती थे और जर्मनी के एक सीटवाले लड़ाकू विमान फोक वुल्फ (एफ.डब्ल्यू 190) का डिजाइन उन्होंने ही तैयार किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय का यह असाधारण लड़ाकू विमान था। बाद में डॉ. टैंक बेंगलौर स्थित हिंदुस्तान एयरोनॉटिकल

लिमिटेड (एच.ए.एल) में चले गए और वहाँ उन्होंने भारत का पहला लड़ाकू विमान एच.एफ-24 मारुत तैयार किया।

इन संकटों एवं नाजियों के कष्टों के बावजूद प्रो. स्पांडर ने अपने व्यक्तित्व को बचाए रखा और उच्च व्यावसायिक मानदंडों को भी बनाए रखा। वे हमेशा शांत रहते थे और ऊर्जावान थे। स्वयं पर उनका पूरा नियंत्रण था। वे नई-से-नई तकनीक के बारे में पूरी जानकारी रखते थे और अपने विद्यार्थियों से भी यही उम्मीद रखते थे। वैमानिकी इंजीनियरिंग को अपना विषय चुनने से पहले मैंने उनसे विचार-विमर्श किया था। उन्होंने मुझसे कहा कि किसी को भविष्य को लेकर कभी भी चिंता नहीं करनी चाहिए; बल्कि इसके बजाय ज्यादा महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पढ़ाई के लिए जो भी क्षेत्र चुना है, उस विषय में पूरी मेहनत, उत्साह और धैर्य के साथ पढ़ाई करनी चाहिए। जैसा कि प्रो. स्पांडर देखा करते थे, भारतीयों के साथ संकट शैक्षिक अवसरों की कमी या औद्योगिक बुनियादी ढाँचे का नहीं था, संकट तो अनुशासन और अपने चुनाव को युक्तिसंगत बनाने के बीच अलग करके देख पाने में नाकाम रहने का था। वैमानिकी ही क्यों, इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग क्यों नहीं? मैकेनिकल इंजीनियरिंग क्यों नहीं? मैं खुद इंजीनियरिंग के सभी नए छात्रों से यह कहना चाहूँगा कि जब भी वे विशेषज्ञता हासिल करने के लिए विषय का चुनाव करें तो उसमें देखने लायक जरूरी बात यह है कि उस विषय में उनकी भीतर से रुचि और अंतःप्रेरणा भी है कि नहीं।

प्रो.के.ए.वी.पनदलाई ने मुझे एयरो-स्ट्रक्चर डिजाइन एंड एनालिसिस विषय पढ़ाया था। वे एक बहुत ही खुशमिजाज, दोस्ताना और उत्साही शिक्षक थे और हर साल अपने

अध्यापन के तरीके में एक नयापन लेकर आते थे। ये प्रो. पनदलाई ही थे, जिन्होंने स्ट्रक्चरल इंजीनियरिंग के छिपे हुए तथा गोपनीय पहलुओं को पूरी तरह खोलकर हमारे समक्ष रखा। आज भी मेरा मानना है कि जो भी प्रो. पनदलाई के पास पढ़ा है, वह इस बात से पूरी तरह सहमत होगा कि प्रो. पनदलाई एक महान् बुद्धिजीवी एवं अध्येता थे ; लेकिन उनमें घमंड या हेकड़ी नाम की कोई चीज नहीं थी। उनके छात्र कक्षा में उनसे तमाम बिंदुओं पर असहमति व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र थे।

प्रो.नरसिंह राव एक गणितज्ञ थे और हमें सैद्धांतिक वैमानिकी गतिकी पढ़ाते थे। तरल गतिकी पढ़ाने का उनका तरीका मुझे अब तक याद है। उनकी क्लास में पढ़ने के बाद मैंने गणितीय भौतिकी को दूसरा विषय बनाने का मन बनाया। अकसर मुझसे कहा जाता था कि वैमानिकी डिजाइनों की समीक्षा के लिए मेरे नेफे में एक शब्द चिकित्सा औजार (सर्जिकल नाइफ) रहता है। अगर प्रो. राव की कृपा नहीं होती और वैमानिकी गतिकी के समीकरणों का हल निकालने के लिए वे मुझे प्रेरित नहीं करते तो मेरे पास यह विलक्षण औजार नहीं होता।

वैमानिकी एक बहुत ही मजेदार एवं रूचिकर विषय है, जिसमें एक उन्मुक्तता है, आजादी है। आजादी और पलायन, गति और हलचल तथा सरकने एवं प्रवाह के बीच एक बड़ा जो फर्क है, वहीं इस विज्ञान की गोपनीयता है। मेरे शिक्षकों ने मुझे इन सच्चाइयों के रहस्य बताए। वैमानिकी के बारे में शिक्षकों ने मेरी उत्सुकता और बढ़ा दी। उनकी बौद्धिकता के उत्ताप, विचारों की शुद्धता तथा धैर्य ने मुझे तरल गतिकी के गंभीर अध्ययन में काफी मदद पहुँचाई।.....

धीरे—धीरे मेरे मस्तिष्क में ढेर सारी जानकारियाँ जमा हो गईं। हवाई जहाजों के नए—नए रूप विभिन्न तरह से सामने आने लगे—द्वितल विमान (बाई प्लेन), एक तनीय विमान (मोनो प्लेन), बिना पिछले हिस्सेवाले विमान (टेललैस प्लेन), डेल्टा विंग प्लेन। इन सबकी महत्ता मेरे लिए बढ़ती जा रही थी। मेरे तीनों शिक्षक, जो अपने—अपने विषय के दिग्गज थे, मेरा इस बारे में ज्ञान और बढ़ाने में मदद करते।

मेरा तीसरा और एम.आई.टी. में अंतिम वर्ष एक संक्रमण वर्ष के रूप में था तथा मेरे आनेवाले जीवन में इसका गहरा असर औद्योगिक प्रयासों की एक नई बयार आई हुई थी। मैंने ईश्वर में अपने विश्वास की परीक्षा ली और यह जानना चाहा कि क्या यह वैज्ञानिक सोच प्रगति के तरीके में कहीं उचित साबित हो सकती है। इसके बाद जो स्वीकार्य विचार था, वह यह कि सिर्फ वैज्ञानिक विधियाँ ही ज्ञान का एकमात्र सही रास्ता हैं। मुझे आश्चर्य हुआ, यदि ऐसा है तो क्या पदार्थ ही अंततः वास्तविकता और आध्यात्मिक प्रक्रिया है, न कि पदार्थ की अभिव्यक्ति ? क्या सभी नैतिक मूल्य आपस में एक—दूसरे से जुड़े हैं ?

कोर्स पूरा होने के बाद मुझे नीचे आकर करीब से हमला करनेवाले लड़ाकू विमान का डिजाइन तैयार करने की परियोजना में लगा दिया गया। इस परियोजना में मेरे साथ चार और साथी थे। मैंने वायुगतिकी डिजाइन को तैयार करने और उसकी ड्राइंग की जिम्मेदारी ली थी। जबकि मेरी टीम के साथियों को विमान के प्रणोदन, संरचना, नियंत्रण और उपकरणों के डिजाइन तैयार करने का काम सौंपा गया था। एक दिन मेरे डिजाइन शिक्षक प्रो. श्रीनिवासन ने, जो उस समय एम.आई.टी. के निदेशक भी थे, मेरे

काम की समीक्षा की और इसे निराशाजनक बताते हुए इस पर अपना असंतोष व्यक्त किया। काम में देर के लिए मैंने उनसे कई बार माफी माँगी और अपनी सफाई दी; लेकिन प्रो. श्रीनिवासन ने एक नहीं सुनी। आखिरकार काम पूरा कर लेने के लिए मैंने उनसे एक महीने का वक्त माँगा। कुछ क्षण के लिए उन्होंने मेरी ओर देखा और बोले, देखो, नौजवान, आज शुक्रवार है। मैं तुम्हें तीन दिन का वक्त देता हूँ। अगर सोमवार सुबह तक मुझे यह ड्राइंग नहीं मिली तो तुम्हारी छात्रवृत्ति रोक दी जाएगी। मेरे मुँह से शब्द नहीं निकले। छात्रवृत्ति ही मेरा सबकुछ थी और अगर यह वापस ले ली जाती तो मैं एकदम असहाय हो जाता। मेरे सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं था, सिवाय इसके कि मैं उनके निर्देश के अनुसार अपना काम पूरा कर लेता। उस रात मैंने खाना नहीं खाया और रात भर ड्राइंग बोर्ड पर काम करता रहा। अगली सुबह सिर्फ घंटे भर के लिए समय निकाला, जिसमें तैयार होकर नाश्ता किया। रविवार की सुबह मेरा काम पूरा होने के करीब ही था। तभी अचानक मुझे लगा कि मेरे कमरे में कोई है। प्रो. श्रीनिवासन दूर से खड़े मुझे देख रहे थे। वे सीधे जिमखाना से आ रहे थे और टेनिस के कपड़ों में थे तथा मेरा काम देखने के लिए ही यहाँ रुके थे। मेरा काम देखने के बाद उन्होंने मुझे अपने गले लगा लिया और तारीफ करते हुए मेरी पीठ थपथपाई। उन्होंने कहा, मुझे पता था कि तुम्हारे भीतर तनाव पैदा हो रहा है और काम पूरा करने के लिए मैं जो समय तुम्हें दे रहा हूँ, उसमें वह संभव नहीं होगा। मुझे जरा भी उम्मीद नहीं थी कि इतने भयंकर तनाव में भी तुम अपना काम पूरा कर लोगे।

एम.आई.टी. से जो मेरी सबसे गहरी याद जुड़ी हुई है, वह प्रो. स्पांडर से संबंधित है। विदाई समारोह के दौरान हमें एक

सामूहिक फोटो खिंचवाना था। स्नातक पास करनेवाले सभी छात्र तीन पंक्तियों में खड़े थे और सभी प्रोफेसर आगेवाली पंक्ति में बैठे हुए थे। प्रो. स्पांडर खड़े हुए और मुझे देखा। मैं तीसरी पंक्ति में खड़ा हुआ था। 'यहाँ आओ और आगे की पंक्ति में मेरे साथ बैठो।' प्रो. स्पांडर ने कहा। उन्होंने दोबारा मुझे आगे आने को कहा, 'तुम मेरे सबसे प्रिय छात्र हो। तुम्हारी कड़ी मेहनत ही भविष्य में तुम्हारे शिक्षकों का नाम रोशन करेगी।' उनकी इस प्रशंसा से मेरे समक्ष एक कठिनाई खड़ी हो गई; लेकिन अपने काम के सम्मान की वजह से मैं प्रो. स्पांडर के पास जाकर बैठ गया। मुझे विदाई देते वक्त प्रो. स्पांडर ने कहा, 'ईश्वर तुम्हारी उम्मीदें पूरी करे, तुम्हें सहारा दे, तुम्हें रास्ता दिखाए और भविष्य की यात्रा में तुम्हारा पथ—प्रदर्शक बने।'।

• • • • •

### 3. मेरी मास्को यात्रा

नगेन्द्र

**लेखक परिचय:**—आधुनिक हिन्दी साहित्य के समीक्षक एवं निबंध लेखक डॉ. नगेन्द्र का जन्म अलीगढ़ जिला अतरौली में 09.03. 1915 को हुआ था। विद्यालय सम्बन्धी विविध परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने नागपुर तथा आगरा विश्वविद्यालय में हिन्दी तथा अंग्रेजी से एम.ए की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता शीर्षक पर आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट. की उपाधि से सम्मानित किया।

नगेन्द्र जी पहले कमर्शियल कॉलेज में प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए, कई वर्षों की सेवा के बाद इस पद को छोड़ वे भारतीय रेडियो स्टेशन, दिल्ली में नियुक्त हुए। बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे। साहित्य रचना के क्षेत्र में नगेन्द्र जी ने प्रारम्भ में कविताएँ लिखीं। उनकी कविताओं का संग्रह बनमाला नाम से प्रकाशित है। इनकी ख्याति का आधार है, इनके द्वारा लिखित निबन्ध तथा आलोचना साहित्य। इन्होंने कई पुस्तकों का सम्पादन भी किया है। डॉ. नगेन्द्र जी को अनेक प्रतिष्ठापरक सम्मान और पुरस्कार भी प्राप्त हुए जैसे पद्मभूषण, भारत-भारती आदि।

इनकी संपादित रचनाएँ हैं—हिन्दी ध्वन्यालोक, हिन्दी काव्यांलकार सूत्र, भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, भारतीय नाट्य साहित्य आदि। इनकी मौलिक रचनाएँ हैं— सुमित्रानन्दन पंत, साकेत:एक अध्ययन, आधुनिक हिन्दी नाटक, आधुनिक हिन्दी

कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, अरस्तु काव्यशास्त्र, अनुसंधान और आलोचना, काव्य बिंब, शैली विज्ञान आदि।

.....

16 अगस्त, 1967 को पूर्वाह्न में 11:30 बजे हम इल्यूशिन विमान द्वारा ताशकन्द से मास्को के लिए रवाना हुए। यह दूरी लगभग 4,000 किलोमीटर की है और 4:30 घंटे में तय होती है। नियत समय पर वायुयान मास्को के राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुँच गया। उतरते हुए विमान से दृश्यमान मास्को का वह दिगंत विस्तार और विराट् ऐश्वर्य अद्भुत था। वहाँ के विशाल वायुयानों को देखकर पुराणों की यह कल्पना साकार हो उठी कि आदिम युग में पर्वत भी उड़ा करते थे। अन्तरराष्ट्रीय हवाई अड्डे को विस्तीर्ण प्रांगण दृष्टि को बाँध लेता था। उन भव्य भवनों के विराट् आयामों में मानो मानव—मन की ऊर्जा राशिभूत हो गई थी। ऐसे ही परिवेश से अभिभूत होकर कदाचित् कालिदास ने हिमालय के अनन्त हिम—प्रसार की भगवान् शंकर के राशिभूत अट्टहास से उपमा दी थी। मास्को के इस विराट् परिदृश्य को देखकर यह लगता था, जैसे मेरे अपने व्यक्तित्व का विस्तार हो रहा है। यह अनुभव कुछ ऐसा ही था, जैसा कि हिमालय या समुद्र के अनन्त प्रसार को देखकर होता है। केवल एक ही भेद था—प्रकृति के ऐश्वर्य के माध्यम से जहाँ परोक्ष सत्ता के विराट् रूप का आभास होता है, वहाँ इस नगर के वैभव को देखकर मानव के असीम गौरव का प्रभाव मन पर पड़ता है।



मास्को का रूसी नाम मस्क्वा है। सोवियत संघ का यह सबसे बड़ा शहर है और विश्व में इसका स्थान पाँचवाँ या छठा है। इसका नामकरण मस्क्वा नदी के नाम पर हुआ है जो अब शहर के बीच में होकर बहती है। आबादी करीब पैंसठ लाख है और इतिहास लगभग आठ सौ वर्ष पुराना। द्वितीय विश्वयुद्ध में सोवियत संघ के लिए मास्को का संरक्षण न केवल राष्ट्रीय सम्मान का, वरन् जीवन—मरण का प्रश्न बन गया था और उसमें विजय प्राप्त करने के बाद मास्को नगर को “ऑर्डर ऑफ लेनिन” से अलंकृत किया गया है।

विमान से उतरते ही मेरे मित्र, हिन्दी—उर्दू के रूसी विद्वान—डॉ. दीपशित्स तथा मैत्री संघ के अन्य प्रतिनिधियों ने हमारा स्वागत किया। हमारे आवास की व्यवस्था यूक्राइना में की गई थी। ‘यूक्राइना’ मास्को का बड़ा ही आलीशान होटल है जिसमें लगभग 20 मंजिलें हैं। होटल की इमारत बाहर से बड़ी भव्य और भीतर से उतनी ही स्वच्छ है। नई होने पर भी उसमें रूस की मध्ययुगीन वास्तु—शैली का प्रयोग है। हम लोग पाँचवी मंजिल पर ठहरे थे—और मेरे कमरे का नम्बर था 530। लिफ्ट पर चढ़ते—उतरते समय मैं हाथ का पंजा दिखाकर पाँचवीं मंजिल का संकेत करता था और वहाँ पहुँचकर मेज पर लगे चित्र पर उँगली रखकर कमरा नं. 530 की चाभी माँगता था। ‘पाँच’ और ‘पाँच—सौ—तीस’ के रूसी पर्याय भी मैंने याद कर लिए थे।

16 अगस्त की शाम को मैत्री भवन में भारतीय स्वातंत्र्य—पर्व का आयोजन हुआ, जिसमें सोवियत संघ के उप—प्रधानमंत्री तथा अन्य वरिष्ठ अधिकारी, भारतीय दूतावास के सदस्य एवं कर्मचारी तथा अनेक प्रवासी भारतीय नर—नारी उपस्थित थे। इस उत्सव में पूर्ण

व्यवस्था और सद्भावना का वातावरण था: आतिथेय वर्ग की ओर से प्रस्तुत स्वागत-कार्यक्रम में —उनके भाषणों और वक्तव्यों में—भारत के प्रति हार्दिक सौहार्द की अभिव्यंजना थी, उनके वचन और व्यवहार से यह स्पष्ट था कि वे हृदय से भारत की सुख-शान्ति के अभिलाषी हैं।

अभिनन्दन के उपरान्त सांस्कृतिक कार्यक्रम की योजना की गई जिसमें नृत्य-गीत के समारोह के साथ-साथ व्यायाम और कौतुक आदि का भी प्रदर्शन था। रूसी शैली का हंस-नृत्य अत्यन्त भाव-कुशल प्रयोग था। उसके सर्वथा विपरीत था संगीत का कार्यक्रम जिसमें रूस का राष्ट्रीय पौरुष मुखरित था—गायक के स्वर और उसके सहचारी वाद्यनाद का वैभव अपूर्व था। लगता था मानो पर्वत-कन्दराओं में मेघों का मंद्राघोष प्रतिध्वनित हो रहा है! मुझ जैसा व्यक्ति भी जिसका मन भारतीय संगीत में भी अर्थ के सौन्दर्य से आगे प्रायः नहीं बढ़ पाता, रूसी संगीत के इस नाद गाम्भीर्य से अप्रभावित नहीं रह सका। व्यायाम और जादू के खेल पूरी सफाई और फुर्ती के साथ पेश किए गए थे जो एक सम्पन्न जाति के स्वस्थ मन और स्वस्थ तन के प्रतीक थे। रूस में पुतलियों के खेल बाल-मनोरंजन के साधन-मात्र न रहकर अब एक विकसित कला का रूप धारण कर चुके हैं। मास्को में उनके लिए अलग मंच बना हुआ है, जहाँ पुतलियों के द्वारा बाकायदा छोटे-छोटे रूपकों का प्रदर्शन होता है।

हमारी आतिथेया श्रीमती येरशोवा हमें एक व्यंग्य-नाट्य दिखाने ले गई जिसमें अमरीकी अर्थव्यवस्था पर कटाक्ष था। यह अपने-आप में पूर्ण एक छाया नाटक था जो 5-6 पुतलियों के द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इन पुतलियों का संचालन नेपथ्य

से कुछ प्रशिक्षित कलाकार कर रहे थे। पुतलियाँ प्रायः उतनी ही बड़ी थीं जितनी कि हमारे यहाँ होती हैं, परन्तु परदे पर उनकी छाया सामान्य स्त्री-पुरुषों के आकार की ही जान पड़ती थी। वे उसी तरह उठती-बैठती, चलती-फिरती और व्यवहार करती थीं—उसी तरह अपने राग-द्वेष, शोक-क्रोध की अभिव्यक्ति करती थीं, जिस तरह साधारण मनुष्य करते हैं। उनके संवाद टेप किए हुए थे और छाया-प्रकाश का प्रयोग इतना व्यवस्थित था कि पुतलियों की सूक्ष्म मुद्राएँ भी बिलकुल स्पष्ट नजर आती थीं। चित्र की माध्यम-भाषा रूसी थी, अतः हमारी मेजबान श्रीमती येरशोवा बीच की कुर्सी पर बैठी हुई साथ-साथ अंग्रेजी रूपान्तर करती चलती थीं। श्रीमती येरशोवा का अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व अत्यन्त मधुर था। उनकी रूपाकृति तथा वाणी-व्यवहार में एक सहज मार्दव था जिसका मन पर बड़ा सुखद प्रभाव पड़ता था।

मास्को की जनता नाटक—सिनेमा आदि की बड़ी शौकीन है। वहाँ न जाने कितने सिनेमाघर हैं, जहाँ नगर की जनसंख्या का एक प्रतिशत भाग एक साथ बैठकर मनोरंजन कर सकता है। मास्को के सबसे प्रसिद्ध रंग-मंच हैं बोलशोई थियेटर और आर्ट थियेटर जिसका नाम गोर्की थियेटर हो गया है। 18 तारीख की शाम को हम तोल्सतोय के प्रसिद्ध उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' पर आद्धृत फिल्म के युद्ध-दृश्य देखने गए। यह सिनेमाघर तो सामान्य ही था, पर इसका परदा बहुत बड़ा था—सामान्य परदे से कम-से-कम चार गुना आकार था उसका। यहाँ प्रायः ऐसी फिल्में दिखाई जाती हैं जिसमें दृश्य-विस्तार अधिक होता है। इस फिल्म में 'युद्ध और शान्ति' में वर्णित संग्राम के भयंकर दृश्यों को उनके पूरे विस्तार के साथ अत्यन्त यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया

था। युद्ध के अनेक चलचित्र मैंने देखे थे किन्तु उनका ऐसा भीषण रूप प्रायः नहीं देखा था। सिनेमा का एक नया रूप हमने प्रदर्शनी में देखा, जिसमें दर्शक बीच में खड़ा होकर चारों ओर पर्दों पर घूमते हुए दृश्यों का अंग बन जाता है। चित्रशालाएँ भी काफी हैं—इनमें से दो निरीक्षण हमने किया। इनमें युद्ध के चित्र, विशेष कर अक्टूबर की महान् क्रान्ति के चित्र प्रायः रहते हैं। इस चित्रकला में मार्दव और सूक्ष्म व्यंजना की अपेक्षा ऊर्जा एवं यथार्थ—दर्शन का प्राधान्य था....रंग गाढ़े और चटकीले थे— रेखाएँ पुष्ट और गहरी। रूस के शिक्षाविदों का विश्वास है कि प्रारम्भ से ही इस तरह के चित्र आदि देखने से जनता जीवन—संघर्ष के हर पहलू का सामना करने के लिए तैयार हो जाती है—बच्चों के दिल मजबूत हो जाते हैं और युद्ध का भय उनके मन से निकल जाता है। इस प्रकार युद्ध के अभ्यास की पहली शिक्षा वे यहीं से शुरू करते हैं।

मेरे लिए मैत्री—संघ की ओर से कुछ साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया था जिसमें मुख्य था—गोर्की संग्रहालय और तोल्सतोय संग्रहालय का निरीक्षण। गोर्की—संग्रहालय की स्थापना सन् 1961 में की गई थी, जबकि सोवियत सरकार के एक निर्णय के अनुसार मास्को के उस भवन को, जहाँ लेखक ने अपने जीवन के अन्तिम पाँच वर्ष व्यतीत किए थे, गोर्की—संग्रहालय का रूप दे दिया गया था। द्वार की दीर्घा को पार कर हमने गोर्की के अध्ययन—कक्ष में प्रवेश किया, जहाँ बीच में एक लम्बी—चौड़ी मेज थी, पुराने सिक्के और तमगे आदि सजाकर रखे हुए थे। मेज के पास एक बड़ा सोफा और गद्दीदार कुर्सियाँ थीं, जहाँ वे प्रायः अपने अतिथियों से भेंट किया करते थे। यह मेज गोर्की के विशेष आदेश पर उनकी आवश्यकता के

अनुसार बनाई गई थी, इसकी ऊँचाई इसलिए कुछ अधिक रखी गई थी जिससे कि गोर्की के क्षयग्रस्त फेफड़ों को आराम मिल सके, लम्बाई—चौड़ाई इसलिए ज्यादा थी कि गोर्की की तरह—तरह की अध्ययन व लेखन सामग्री को यथास्थान रखा जा सके। लेखन—सामग्री के अन्तर्गत दो—एक लकड़ी के होल्डर थे, कुछ काली व कुछ लाल—नीली पेंसिलें थीं जिन्हें गोर्की स्वयं तराश कर रखते थे। काली पेंसिलें प्रायः नोट लिखने को काम आती थीं और लाल—नीली पेंसिलों से गोर्की लेखों और पुस्तकों पर निशान लगाया करते थे। बीच में लिखने के बड़े—बड़े रूलदार कागज तरतीब से रखे थे, जिनमें काफी चौड़ा हाशिया था—इस हाशिये का उपयोग संशोधन करने के लिए होता था। पास में ही छोटी—छोटी चिटों का पैकेट था, जिन पर वे नये विचारों और कल्पनाओं को अंकित कर लिया करते थे। यद्यपि गोर्की की सख्त हिदायत थी कि इन्हें उपयोग के बाद फौरान नष्ट कर दिया जाए और वे प्रायः स्वयं ही ऐसा कर दिया करते थे, फिर भी उनके पुत्र अलीकजेविच ने, जो एक प्रकार से उनके सचिव का काम करते थे, इनमें से कुछ टुकड़ों को बचाकर रख लिया था। आज रूस के अनेक आलोचक और शोधक उस महान् उपन्यासकार की सृजन—प्रक्रिया को समझने में इनका सम्यक् उपयोग करते हैं। गोर्की प्रातः 9 बजे यहाँ आकर अपना लेखन—कार्य आरम्भ कर देते थे और दो बजे उठते थे—पूर्वाह्न में वे नियमित रूप से साहित्य—रचना ही करते थे। अपराह्न में वे नव—लेखकों की पांडुलिपियों का संशोधन, व्यक्तिगत एवं साहित्यिक पत्राचार और पत्र—पत्रिकाओं का सम्पादन आदि करते थे।

संग्रहालय का मर्मस्थल है गोर्की का शयन—कक्ष। इसमें गोर्की की शैया और उनके वस्त्र आज भी संरक्षित हैं। गोर्की को

लगभग 11 बजे पढ़ते-पढ़ते सोने की आदत थी। शैया के बराबर एक सोफा पड़ा है और उसके सिरहाने छोटी-सी मेज है जिस पर लेखक की पौत्री मर्फा की तस्वीर रखी हुई है। शयन-कक्ष में इस तस्वीर को देखकर अनायास ही मेरे मन में गोर्की के विषय में अनेक कोमल कल्पनाएँ जम गईं। इतने ही में हमारी निदेशिका ने मेज का दराज खोला और एक अन्य चित्र निकालकर मेरे सामने रख दिया। यही चित्र गोर्की के एकमात्र पुत्र, मर्फा के पिता, अलीकजेविच का था, जो गोर्की की मृत्यु से दो-एक वर्ष पहले दिवंगत हो गए थे। इसे देखकर मेरी वे कोमल कल्पनाएँ आँसुओं से आर्द्र हो गईं। रुग्ण गोर्की में अलीकजेविच के चित्र के आघात को सीधा झेलने की ताकत नहीं रह गई थी, इसलिए उसे वे दराज के भीतर रखते थे और मर्फा के चित्र की आड़ लेकर इस आघात को सहने का प्रयत्न करते थे। मैं सोचने लगा कि लाल क्रान्ति का यह साहित्यिक सेनानी क्या वास्तव में इतना कमजोर था ? परन्तु मेरे मन ने तुरन्त ही उत्तर दिया कि यह समाजवादी यथार्थ-दर्शन के उद्गाता का सार्वजनिक व्याख्यान-कक्ष नहीं है-‘माँ’ के रचयिता का एकान्त शयन-कक्ष है। गोर्की-संग्रहालय के भीतर मैं जिज्ञासा और संभ्रम के भाव लेकर गया था, पर करुणा से भीगा मन लेकर बाहर आया।

तोल्सतोय का मुख्य आवास और संग्रहालय यास्नाया पोलियाना में है जो मास्को से लगभग 200 किलोमीटर दूर है। मेरी वहाँ जाने की प्रबल इच्छा थी, परन्तु मेरे साथी पूरा एक दिन उस पर व्यय करने को तैयार नहीं थे। अतः मुझे मास्को-स्थित तोल्सतोय-संग्रहालय से ही सन्तोष करना पड़ा। यह तोल्सतोय का शीतकालीन आवास था जो एक विशाल उद्यान के मध्य स्थित

है। यहाँ एक ओर तोल्सतोय के कुल की सामन्तीय गरिमा और दूसरी ओर उनके अपने व्यक्तिगत जीवन की सादगी का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। इस भवन का आहार—कक्ष काफी बड़ा था और साज—सामान कीमती था। परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए अलग—अलग कमरे थे—एक कमरा उनके सबसे छोटे बच्चे और उसकी अभिभाविका का था जिसमें बच्चे के खेलने व पढ़ने—लिखने की चीजें आज भी वैसी ही रखी थीं। ऊपर के एक कमरे में शिकार का सामान था—कई तरह की बन्दूकें और रीछों की खालें थीं। इनमें वह रीछ भी था, जिससे प्राण—रक्षा करने के लिए तोल्सतोय को काफी संघर्ष करना पड़ा था। शान्ति का यह पुजारी खूँखार शिकारी भी था—यह जानकर मुझे थोड़ा कुतूहल हुआ। भवन के मध्य भाग में लेखक और उनकी पत्नी का शयन—कक्ष था जो राजसी सज्जा से सम्पन्न था। तोल्सतोय की सादगी के स्थान पर यहाँ उनकी पत्नी की राजसी प्रकृति का प्रभाव अधिक था। तोल्सतोय की पत्नी का स्वभाव कुछ आक्रमक था—उन्हें अपने पति की साधु वृत्ति और दानशीलता के प्रति अधिक सहानुभूति नहीं थी। परन्तु दूसरी ओर अपने पति की रचनाओं की पांडुलिपि स्वयं ही तैयार करने का भी उनका अत्यन्त प्रबल आग्रह रहता था—‘युद्ध और शान्ति’ की पांडुलिपि का तोल्सतोय ने तीन—चार बार संशोधन किया था और हर बार काउंटेस ने अपने हाथ से ही उसकी पांडुलिपि तैयार की थी। नारी की मनोवृत्ति का यह विराधाभास रोचक होते हुए भी विचित्र नहीं था। उस सामन्तीय महिला का मन एक ओर पति की साधु प्रवृत्तियों के विरुद्ध जितना विद्रोह करता था, दूसरी ओर उनके साहित्यिक गौरव का सहभोग करने के लिए उतना ही व्यग्र भी

रहता था। फिर भी, मेरे मुँह से निकल गया; बेचारे तोल्सतोय के घर में ही युद्ध और शान्ति का उपन्यास चल रहा था।

मेरे लिए रूस-यात्रा का सबसे प्रमुख आकर्षण था मास्को विश्वविद्यालय। इसकी स्थापना सन् 1755 में श्री लोमोनोसोव ने की थी। संसार के प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्रों में मास्को विश्वविद्यालय का स्थान अन्यतम है। विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार पर स्थित लोमोनोसोव की मूर्ति मानो इसके शैक्षिक गौरव की प्रतीक है। यह इमारत 34 मंजिल की है, इसमें 14 विभाग व अनेक उपविभाग और 170 प्रयोगशालाएँ हैं, जो ज्ञान-विज्ञान के नवीनतम प्रसाधनों से सम्पन्न हैं। अधिकांश विभाग विज्ञान तथा उद्योग-विज्ञान से सम्बद्ध हैं—मानविकी विद्याओं में केवल प्राच्य भाषा और भाषा-विज्ञान के ही केन्द्र यहाँ हैं, शेष नगर के मध्य में स्थित विश्वविद्यालय के प्राचीन भवनों में आवासित हैं। सामान्य विभागों के अतिरिक्त यहाँ चार शोध-संस्थान, तीन संग्रहालय, चार वेधशालाएँ तथा कुछ अन्य केन्द्र भी हैं, जो ज्ञान-विज्ञान की बहुविध आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। विद्यार्थियों की संख्या लगभग तीस हजार है जिनमें से प्रायः आधे विद्यार्थी पत्राचार तथा सांध्यकालीन पाठ्यक्रम में सम्बद्ध हैं। प्राध्यापक चार हजार के लगभग हैं—अर्थात् सात-आठ विद्यार्थियों के लिए एक अध्यापक की व्यवस्था है। अध्यापक का वेतनमान काफी अच्छा है—प्रोफेसर को पाँच-छह हजार रूपया मासिक मिलता है। ग्रन्थालय में लगभग पचपन लाख पुस्तकें हैं। छात्रावास अत्यन्त स्वच्छ एवं सुरिचिपूर्ण हैं—स्नातकोत्तर छात्रों के लिए अलग-अलग कमरों की व्यवस्था है, छात्राओं के लिए अलग आवास हैं, परन्तु दम्पती साथ-साथ रह सकते हैं। विश्वविद्यालय बन्द था, अतः यहाँ के आचार्यों से भेंट करने का अवसर तो हमें नहीं मिला, परन्तु उसके



बाह्य वैभव का प्रभाव भी कम गहरा नहीं था। उसके विराट् भवन और अपार साधन—सम्पदा को देखकर विश्वविद्यालय के शब्दार्थ की—उसके सार्वभौम रूप की—कल्पना मानो साकार हो गई।

अन्य देशों की भाँति सोवियत संघ में मानविकी विद्याओं की अपेक्षा भौतिकी विज्ञान और समाज—विज्ञान पर अधिक बल है। शिक्षा का यहाँ व्यावहारिक जीवन के साथ प्रत्यक्ष और घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिए भौतिक जीवन के विकास में सहायक विषयों पर स्वभावतः अधिक ध्यान रहता है और ज्ञान के औद्योगिक पक्ष को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाता है। प्राचीन भारत में विद्या और धर्म का जिस प्रकार अविच्छिन्न सम्बन्ध था, इसी प्रकार सोवियत संघ में विद्या और व्यवहार में अनिवार्य सम्बन्ध है। इसीलिए उद्योग—विज्ञान, अर्थशास्त्र तथा उसके सहायक विषयों का जिस स्तर पर विकास हो रहा है, उस स्तर पर दर्शन और सौन्दर्यशास्त्र आदि का नहीं हो रहा। साहित्य का उच्चतर अध्ययन और अनुसंधान प्रायः शोध—प्रतिष्ठानों में ही होता है।

अन्य औद्योगिक केन्द्रों की भाँति मास्को में भी एक विकास—प्रदर्शनी का स्थायी आयोजन है, जहाँ सोवियत संघ की उपलब्धियों की झाँकी अनायास ही मिल जाती है। जिनके पास समय का अभाव हो, उन्हें यह प्रदर्शनी अवश्य देखनी चाहिए। प्रदर्शनी की ओर जाते हुए, सबसे पहले हमारा ध्यान गया एक बड़ी ऊँची रॉकेट—जैसी इमारत की ओर जो अन्तरिक्ष—अभियान की सिद्धियों की प्रतीक और उसके साहसी शहीदों की स्मारक है। विशाल प्रांगण के भीतर अनेक कक्ष और मंडप हैं जो सोवियत राष्ट्र के बहुविध विकास का मानचित्र प्रस्तुत करते हैं। मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही हम रंगमंच के पास पहुँचे जहाँ दर्शकों के

विश्राम के लिए नृत्यगीत आदि की व्यवस्था है। विज्ञान, शिक्षा और कला की प्रदर्शनी देखने के बाद हमने अन्तरिक्ष यान के प्रारूप के समीप जाकर निरीक्षण किया। पृथ्वी पर एक विशाल यंत्र रखा हुआ है जिसके अन्दर काफी ऊँचाई पर रॉकेट है। पहले यह पूरे-का-पूरा यंत्र बड़े वेग से आकाश में उड़ता है और फिर जब वह एक निश्चित ऊँचाई पर पहुँच जाता है तो उसमें से रॉकेट छूटकर अन्तरिक्ष में उड़ लगता है और आधार-यंत्र बीच में ही नष्ट हो जाता है। इस अन्तरिक्ष यान के सामने खड़े होकर मैं मानव-मेधा के बढ़ते हुए अभियान का विराट् दृश्य कल्पना की आँखों से देखने लगा और कुरुक्षेत्र की निम्नांकित पंक्तियाँ मेरी अन्तश्चेतना में गूँज गईं:

यह मनुज,

जिसका गगन में जा रहा है यान,

खोलकर अपना हृदय गिरि, सिन्धु, भू, आकाश

है सुना जिसको चुक निज गुह्यतम इतिहास।

खुल गए परदे, रहा अब क्या यहाँ अज्ञेय,

किन्तु नर को चाहिए नित विघ्न कुछ दुर्जेय

सोचने को और करने को नया संघर्ष,

नव्य जय का क्षेत्र, पाने को नया उत्कर्ष।

सोवियत संघ के राष्ट्रीय एवं राजनीतिक जीवन का स्नायु-केन्द्र है: क्रेमलिन। संसद् भवन, सचिवालय और पार्टी का सभा-भवन आदि यहीं हैं। यहीं वह प्रसिद्ध लाल चौक (रेड

स्क्वायर) है, 'जहाँ अक्टूबर' की महान् क्रान्ति के अवसर पर सोवियत राष्ट्र का विशाल सैनिक-प्रदर्शन होता है। क्रान्ति से पूर्व रूस के प्राचीन शासकों का राज्यागार यहाँ था। उनके राजभवन का एक भाग आज 'ऐतिहासिक संग्रहालय' बन गया है जहाँ सम्राटों के अपूर्व ऐश्वर्य के अवशेष-अमूल्य वस्त्रालंकार, शास्त्रास्त्र, यान और शिविकाएँ, राजसी अश्व तथा वैभव-विलास के अनेक प्रसाधन-यथावत् सुरक्षित हैं। वर्तमान और अतीत का यह अन्तर कितना रंगीन था! पचास वर्ष में परिवर्तन का चक्र इतने वेग से घूम सकता था-यह सोचकर विशेष आश्चर्य तो हमें नहीं हुआ, क्योंकि कुछ-कुछ ऐसे ही दृश्य भारत के रजवाड़ों में भी देखने को मिलते हैं, फिर भी विधि की विडम्बना का एक अपूर्व चित्र हमारे सामने उपस्थित हो गया।

इतने में ही हम लोग लेनिन-समाधि के निकट पहुँच गए जहाँ का वातावरण एकदम गम्भीर और श्रद्धा-भरित था। लेनिन का यह स्मारक क्रेमलिन का हृदय और मास्को का पुण्य तीर्थ है। वहाँ पूर्वाह्न में दर्शकों का ताँता लग जाता है, और यह पंक्ति प्रायः तीन-चार मील लम्बी होती है। सोवियत संघ की जनता, देश-विदेश के लोग-आबाल-वृद्ध-नर-नारी धूप, वर्षा और हिमपात की चिन्ता न कर, निश्चल भाव से पंक्तिबद्ध खड़ा रहते हैं। उन्हें देखकर श्री वेंकटेश्वर के मन्दिर का दृश्य मेरी कल्पना में झूल गया जहाँ मीलों तक फैला हुआ भक्त-समुदाय भगवान् के दर्शन के लिए इसी प्रकार पंक्तिबद्ध खड़ा रहता है। विवेक ने प्रश्न किया कि ये लोग तो भक्त नहीं हैं, परन्तु तुरन्त ही मन ने उत्तर दिया कि अविचल आस्तिक बुद्धि के बिना न इस प्रकार की श्रद्धा सम्भव है और न जीवन की प्रगति। आस्तिक भावना के

बिना मनुष्य के लिए जीना ही दूभर है—विकास या प्रगति की तो बात ही क्या ?

‘धर्म’ शब्द का प्रयोग वहाँ नहीं है, कम—से—कम इस सन्दर्भ में तो वह सोवियत जीवन—दर्शन के सर्वथा प्रतिकूल पड़ेगा, परन्तु मैं मन में सोचने लगा कि यह आस्था क्या अधार्मिक हो सकती है? और, वास्तव में, उस समाधि के भीतर बिलकुल मन्दिर या मस्जिद का—सा ही वातावरण है। वैसी ही पवित्र शान्ति, वही भौतिक संसर्गों से मुक्त होने की भावना। लेनिन का शरीर आज भी उसी शान्त मुद्रा में विद्यमान है, उसके ऊपर बिजली का हल्का—सा प्रकाश रहता है जिससे उनकी आकृति का प्रत्येक अवयव स्पष्ट लक्षित हो सके। प्राणों की अदम्य ऊर्जा रचनात्मक बनने पर कैसी स्निग्ध हो जाती है, समर्पित जीवन का अन्त कितना शान्तिमय होता है, मानव—चेतना की यह अन्तिम अनुभूति लेनिन की मुद्रा में सहज रूप से अंकित है।

पाँच दिन का समय ही कितना होता है—और वास्तव में मास्को के दर्शनीय स्थान, जैसे—लेनिन—ग्रन्थागार, लेनिन—संग्रहालय, मार्क्स—स्मारक, मास्को—स्टेडियम आदि को हम सिर्फ बाहर से ही देख पाए। फिर भी, मैंने जो कुछ देखा, वह काफी स्पष्ट है। मास्को का जनजीवन स्वच्छ और स्वस्थ है। परिवार की संस्था में रूसवासियों का विश्वास अब भी बना हुआ है। माता—पिता, भाई—बहन आदि के रक्त—सम्बन्धों की रक्षा वे पूरी कर्तव्य—भावना के साथ करते हैं। दाम्पत्य जीवन वहाँ का बहुत सुखी है, स्त्री और पुरुष दोनों ही प्रायः काम करते हैं, परन्तु आर्थिक दृष्टि से आत्म—निर्भर होने पर भी वैवाहिक सदाचार में निष्ठा रखते हैं। ऐसी स्त्रीयाँ वहाँ अनेक हैं जो पति की मृत्यु के

बाद दूसरा विवाह नहीं करतीं। सब मिलाकर यहाँ का जीवन—दर्शन स्वस्थ और शुद्ध है। लोभ, कार्पण्य, तृष्णा आदि विकार सामान्य जनजीवन में नहीं हैं।

21 की रात को साढ़े ग्यारह बजे रूस की अन्तराष्ट्रीय विमान—सेवा एयरोफ्लोट के विशालकाय वायुयान द्वारा मैं दिल्ली के लिए रवाना हो गया। भारी मन से अत्यन्त स्नेहपूर्वक मैंने रूसी मित्रों से विदा ली। कुछ निद्रा और कुछ तन्द्रा के बाद सूर्य का प्रकाश गवाक्षों में से आने लगा और आध घंटे के भीतर लड़खड़ाती अंग्रेजी में, केबिन से यह सुखद घोषणा सुनाई पड़ी कि थोड़ी ही देर में हमारा हवाई जहाज पालम हवाई अड्डे पर उतरने वाला है। और पालम आ गया—वही चिरपरिचित, चिरकांक्षित पालम, दिल्ली का सिंहद्वार—दिल्ली जहाँ मेरा विश्वविद्यालय है, मेरा अध्ययन—कक्ष है, परिजन—प्रियजन से भरा मेरा आवास है। कितना महान् था विदेश, पर कितना प्रिय है मेरा देश!

• • • • •

## 4. आध्यात्मिक पागलों का मिशन

हरिशंकर परसाई

**लेखक परिचय:**—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी में 22 अगस्त 1942 को हुआ था। इन्होंने स्नातक तक की पढ़ाई यहीं से पूरी की और फिर एम.ए. करने के लिए नागपुर विश्वविद्यालय गए। 18 वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने वन विभाग में नौकरी करनी शुरू कर दी। इसके साथ ही 1942 में मॉडल हाईस्कूल में अध्यापन का भी कार्य करने लगे थे। कुछ समय बाद नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन कार्य करने लग गए।

परसाई जी हिन्दी के पहले लेखक हैं, जिन्होंने व्यंग्य को हिन्दी की एक विधा का दर्जा दिलाया और उसे मनोरंजन की परम्परागत परिधि से निकालकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। उनकी व्यंग्य रचनायें पाठकों के मन में केवल गुदगुदी ही पैदा नहीं करती, बल्कि उन्हें उन सामाजिक वास्तविकताओं के सामने खड़ा करती हैं जिनसे उनका अलग रह पाना असंभव है। लगातार खोखली होती जा रही हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में पिसते मध्यवर्गीय मन की सच्चाइयों को हरिशंकर परसाई ने बहुत ही निकटता से परखा है। इसलिए वे हिन्दी साहित्य जगत में महान व्यंग्यकार के रूप में विख्यात हैं।

हरिशंकर परसाई जी ने अपनी रचना की भाषा शैली को कुछ इस तरह से प्रयोग किया है कि इनकी किसी भी रचना को पढ़ने वाला व्यक्ति उस स्थिति को भलीभांति महसूस कर सकता है। जैसे कि उस व्यंग्य को लिखने वाला उसके सामने बैठकर

उस कहानी को प्रस्तुत कर रहा है। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार और शोषण पर करारा व्यंग्य किया है, जो हिन्दी व्यंग्य साहित्य में अनूठा है। वे अपने लेखन को एक सामाजिक कर्म के रूप में परिभाषित करते हैं और उनका समूचा साहित्य वर्तमान से मुठभेद करता हुआ दिखाई देता है।

इनकी मुख्य रचनाएँ इस प्रकार हैं:— ‘हँसते हैं रोते हैं’, ‘भोलाराम का जीव’ (कहानी), ‘रानी नागफनी की कहानी’ (उपन्यास), तिरछी रेखाएँ (संस्मरण), भूत के पाँव पीछे, माटी कहे कुम्हार से, सदाचार का तावीज, विकलांग श्रद्धा का दौर आदि निबन्ध संग्रह हैं।

विकलांग श्रद्धा का दौर के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से आपको सम्मानित किया गया।

शुक्लोत्तर युग के हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ व्यंग्यकार श्री हरिशंकर परसाई जी का निधन 10 अगस्त 1995 को हुआ।

.....

भारत के सामने अब एक बड़ा सवाल है—अमेरिका को अब क्या भेजे? कामशास्त्र वे पढ़ चुके। संत देख चुके। साधु देख चुके। गाँजा और चरस वहाँ के लड़के पी चुके। भारतीय कोबरा देख लिया। गिर का सिंह देख लिया। जनपथ पर ‘प्राचीन’ मूर्तियाँ भी खरीद लीं। अध्यात्म का आयाता भी अमेरिका काफी कर चुका और बदले में गेहूँ भी दे रहा है। हरे कृष्ण, हरे राम भी बहुत हो गया।

महेश योगी, बाल योगेश्वर , बाल भोगेश्वर आदि के बाद अब क्या हो ? मैं देश-भक्त आदमी हूँ। मगर मैं अमेरिकी पीढ़ी को भी जानता हूँ। मैं जानता हूँ, वह बोर समाज का आदमी हैं—याने बड़ा बोर आदमी। शेयर अपने आप डॉलर दे जाते हैं। घर में टेलीविजन है, दारू की बोतलें हैं। शाम को वह दस-पंद्रह आदमियों से हाउ डु यू डू कर लेता है। पर इससे बोरियल नहीं मिटती। हनोई पर कितनी भी बम-वर्षा अमेरिका करे, उत्तेजना नहीं होती। कुछ चाहिए उसे। उसे भारत से ही चाहिए।

मुझे चिंता जितनी बड़ी अमेरिका की है उतनी ही भारतीय भाइयों की। इन्हें भी कुछ चाहिए।

अब हम भारतीय भाई वहाँ डॉलर और यहाँ रुपयों के लिए क्या ले जाएँ? रविशंकर से वे बोर हो चुके। योगी, संत वगैरह भी काफी हो चुके। अब उन्हें कुछ नया चाहिए—बोरियत खत्म करने और उत्तेजना के लिए। डॉलर देने को वे तैयार हैं।

मेरा विनम्र सुझाव है कि इस बार हम भारत से 'डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन' ले जाएँ। ऐसा मिशन आज तक नहीं गया। यह नायाब चीज होगी—भारत से 'डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन' याने आध्यात्मिक पागलों का मिशन।

मैं जानता हूँ। आम अमेरिकी कहेगा—वी हेव सीन वन। हिज नेम इज कृष्ण मेनन। (हमने एक पागल देखा है। उसका नाम कृष्ण मेनन है।) तब हमारे एजेंट कहेंगे—वह 'डिवाइन' (आध्यात्मिक) नहीं था। और पागल भी नहीं था। इस वक्त सच्चे आध्यात्मिक पागल भारत से आ रहे हैं।



मैं जानता हूँ आध्यात्मिक मिशन 'स्मगलिंग' करती रहती हैं। पर भारत सरकार और आम भारतीयों को यह नहीं मालूम कि लोगों को 'स्वर्ग' में भी स्मगल किया जाता है।

यह अध्यात्म के डिपार्टमेंट से होता है। जिस महान देश भारत में गुजरात के एक गाँव में एक आदमी ने पवित्र जल बाँटकर गाँव उजाड़ दिया, वह क्या अमेरिकी को स्वर्ग में 'स्मगल' नहीं कर सकता ?

तस्करी सामान की भी होती है—और आध्यात्मिक तस्करी भी होती है। कोई आदमी दाढ़ी बढ़ाकर एक चले को लेकर अमेरिका जाए और कहे, 'मेरी उम्र एक हजार साल है। मैं हजार सालों से हिमालय में तपस्या कर रहा था। ईश्वर से मेरी तीन बार बातचीत हो चुकी है।' विश्वासी पर साथ ही शंकालु अमेरिकी चले से पूछेगा—क्या तुमरे गुरु सच बोलते हैं? क्या इनकी उम्र सचमुच हजार साल है ? तब चेला कहेगा, 'मैं निश्चित नहीं कह सकता, क्योंकि मैं तो इनके साथ सिर्फ पाँच सौ सालों से हूँ।'

याने चले पाँच सौ साल के वैसे ही हो गए और अपनी अलग कंपनी खोल सकते हैं। तो मैं भी सोचता हूँ कि सब भारतीय माल तो अमेरिका जा चुका—कामशास्त्र, अध्यात्म, योगी, साधु वगैरह।

अब एक ही चीज हम अमेरिका भेज सकते हैं—वह है भारतीय आध्यात्मिक पागल—इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक। इसलिए मेरा सुझाव है कि 'इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन' की स्थापना जल्दी ही होनी चाहिए। यों मेरे से बड़े—बड़े लोग इस देश में हैं।

पर मैं भी भारत की सेवा के लिए और बड़े अमेरिकी भाई की बोरियत कम करने के लिए कुछ सेवा करना चाहता हूँ। यों मैं जानता हूँ कि हजारों सालों से 'हरे राम हरे कृष्ण' का जप करने के बाद भी शक्कर सहकारी दुकान से न मिलकर ब्लैक से मिलती है— तो कुछ दिन इन अमरीकियों को राम—कृष्ण का भजन करने से क्या मिल जाएगा ? फिर भी संपन्न और पतनशील समाज के आदमी के अपने शांति और राहत के तरीके होते हैं—और अगर वे भारत से मिलते हैं, तो भारत का गौरव ही बढ़ता है। यों बरट्रेंड रसेल ने कहा है—अमेरिकी समाज वह समाज है जो बर्बरता से एकदम पतन पर पहुँच गया है—वह सभ्यता की स्टेज से गुजरा ही नहीं। एक स्टेप गोल कर गया। मुझे रसेल से भी क्या मतलब? मैं तो नया अंतरराष्ट्रीय धंधा चालू करना चाहता हूँ— 'डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन'। दुनिया के पगले शुद्ध पगले होते हैं—भारत के पगले आध्यात्मिक होते हैं।

मैं 'डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन' बनाना चाहता हूँ। इसके सदस्य वही लोग हो सकते हैं, जो पागलखाने में न रहे हों। हमें पागलखाने के बाहर के पागल चाहिए याने वे जो सही पागल का अभिनय कर सकें। योगी का अभिनय करना आसान है। ईश्वर का अभिनय करना भी आसान है। मगर पागल का अभिनय करना बड़ा ही कठिन है। मैं योग्य लोगों की तलाश में हूँ। दो—एक प्रोफेसर मित्र मेरी नजर में हैं जिनसे मैं मिशन में शामिल होने की अपील कर रहा हूँ।

मिशन बनेगा और जरूर बनेगा। अमेरिका हमारी एजेंसी प्रचार करेगी—सी रीयल इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक्स (सच्चे भारतीय

आध्यात्मिक पागलों को देखा।) हम लोगों के न्यूयार्क हवाई अड्डे पर उतरने की खबर अखबारों में छपेगी। टेलीविजन तैयार रहेगा।

मिसेज राबर्ट, मिसेज सिंपसन से पूछेगी, 'तुमने क्या सच्चा आध्यात्मिक भारतीय पागल देखा है?' मिसेज सिंपसन कहेगी, 'नो, इज देअर वन इन दिस कंट्री, अंडर गाड?' मिसेज राबर्ट कहेगी, 'हाँ, कल ही भारतीय आध्यात्मिक पागलों का एक मिशन न्यूयार्क आ रहा है। चलो हम लोग देखेंगे: इट विल बी ए रीअल स्पिरिचुअल एक्सपीरियंस। (वह एक विरल आध्यात्मिक अनुभव होगा।)'

न्यूयार्क हवाई अड्डे पर हमारे भारतीय पागल आध्यात्मिक मिशन के दर्शन के लिए हजारों स्त्री-पुरुष होंगे—उन्हें जीवन की रोज ही बोरियत से राहत मिलेगी। हमारा स्वागत होगा। मालाएँ पहनाई जाएँगी। हमारे ठहराने का बढ़िया इंतजाम होगा।

और तब हम लोग पागल अध्यात्म का प्रोग्राम देंगे। हर गैरपागल पहले से शिक्षित होगा कि वह सच्चे पागल की तरह कैसे नाटक करे। प्रवेश-फीस 50 डॉलर होगी और हजारों अमेरिकी हजारों डॉलर खर्च करके 'इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक्स' के दर्शन करने आएँगे।

हमारा धंधा खूब चलेगा। मैं मिशन का अध्यक्ष होने के नाते भाषण दूँगा, वी आर रीअल इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक्स। ऋषीज एंड मुनीज थाउजेंड ईअर्स एगो सेड दैट दि वे टु रीअल इंटरनल पीस एंड साल्वेजन लाइज थ्रू ल्यूनेसी। (हम लोग भारतीय

आध्यात्मिक पागल हैं। हमारे ऋषि—मुनियों ने हजारों साल पहले कहा था कि आंतरिक शांति और मुक्ति पागलपन से आती है।)

इसके बाद मेरे साथी तरह—तरह के पागलपन के करतब करेंगे और डॉलर बरसेंगे।

जिन लोगों को इस मिशन में शामिल होना है, वे मुझसे संपर्क करें। शर्त यह है कि वे वास्तविक पागल नहीं होने चाहिए। वास्तविक पागलों को इस मिशन में शामिल नहीं किया जाएगा—जैसे सच्चे साधुओं की जमात में शामिल नहीं किया जाता।

अमेरिका से लौटने पर, दिल्ली में रामलीला ग्राउंड या लाल किले के मैदान में हमारा शानदार स्वागत होगा। मैं कोशिश करूँगा कि प्रधानमंत्री इसका उद्घाटन करें।

वे समय न निकाल सकीं तो कई राजनैतिक वनवास में तपस्या करते नेता हमें मिल जाएँगे। दिल्ली के 'स्मगल' हमारा पूरा साथ देंगे। कस्टम और एनफोर्स महकमे से भी हमारी बातचीत चल रही है। आशा है वे भी अध्यात्म में सहयोग देंगे।

स्वागत समारोह में कहा जाएगा, 'यह भारतीय अध्यात्म की एक और विजय है, जब हमारे आध्यात्मिक पागले विश्व को शांति और मोक्ष का संदेश देकर आ रहे हैं। आशा है आध्यात्मिक पागलपन की यह परंपरा देश में हमेशा विकसित होती रहेगी।'

'डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन' को जरूर अमेरिका जाना चाहिए। जब हमारे और उनके राजनैतिक संबंध सुधर रहे हैं तो पागलों का मिशन जाना बहुत जरूरी है।

## 5. अलोपी

### महादेवी वर्मा

**लेखिका परिचय:**— महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद में हुआ था। सुशिक्षित एवं संस्कार युक्त घराने में जन्म लेने के कारण महादेवी जी का बचपन से ही शिक्षा एवं आध्यात्मिकता के प्रति झुकाव रहा। सन् 1933 में उन्होंने संस्कृत विषय लेकर एम.ए. किया एवं उसी वर्ष इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका बनी। प्रयाग महिला विद्यापीठ के प्राचार्य पद को भी सुशोभित किया। उनकी साहित्य सेवा के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें 'भारत-भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया। ज्ञानपीठ पुरस्कार की भी हकदार बनी। महादेवी वर्मा मुख्य रूप से कवयित्री हैं परन्तु गद्य लेखन में भी उन्हें भरपूर सफलता मिली। उनका योगदान गद्य लेखन में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने वैचारिक प्रखरता के साथ ओजस्वी, संवेदनशील एवं चित्रात्मक शैली को अपनाया।

रचनाएँ: काव्य—नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्य गीत, दीपशिखा।

गद्य—अतीत के चलचित्र, श्रृंखला की कड़ियाँ, पथ के साथी, स्मृति की रेखाएँ।

.....

अन्धे अलोपी के घटना—शून्य जीवन में उपयोगिता का एक भी परमाणु है या नहीं, इसकी खोज कोई तत्व—वैज्ञानिक ही कर

सकेगा। मुझे तो उसकी कथा आँसू भरी दृष्टि की छाया में काँपते हुए दुःख गीत की एक कड़ी—सी लगती रही है।

वैशाख नये गायक के समान अपनी अग्निवीणा पर एक—से—एक लम्बा आलाप लेकर संसार को विस्मित कर देना चाहता था। मेरा छोटा घर गर्मी की दृष्टि से कुम्हार का देहाती आवाँ बन रहा था और हवा से खुलते, बंद होते खिड़की—दरवाजों के कोलाहल के कारण आधुनिक कारखाने की भ्रान्ति उत्पन्न करता था। मैं इस मुखर ज्वाला के उपयुक्त ही काम कर रही थी अर्थात् उत्तर—पुस्तकों में अन्धाधुन्ध भरे ज्ञान—अज्ञान की राशि को विवेक में तपा—तपाकर ज्ञान—कणों का मूल्य निश्चित कर रही थी।

हम लोग भी कैसे विचित्र हैं। जब बर्फ, खस की टट्टी, बिजली के पंखे आदि अनेक कृत्रिम उपचारों से भी हम अपनी बुद्धि का पिघलना नहीं रोक सकते, तब दूसरों के ज्ञान की परीक्षा लेने बैठे हैं। यदि मस्तष्क, ठीक स्थिति में हो, तो कदाचित् हम न्याय के लिए ऐसे अन्यान्यपरायण हो ही न सकें।

तीसरा पहर थके यात्री के समान मानो ठहर—ठहर कर बढ़ा चला आ रहा था और मेरे हाथ तथा दृष्टि में पृष्ठों पर दौड़ने की प्रतियोगिता चल रही थी। ऐसे अवसर पर किसी का भी आना हमारी अधीरता में झल्लाहट का पुट मिला देता है, उस पर यदि आगन्तुक के कंठस्वर में हमें उसके भिखारीपन का आभास मिल गया हो, तब तो कहना ही क्या। नौकर—चाकर सब अपनी—अपनी कोठरियों के अस्वाभाविक अन्धकार को और सघन करके स्वेच्छा से उलूक होने का सुख भोग रहे थे। सोचा, न उठूँ। पुकारने वाले को असमय आने का दण्ड सहना चाहिए: परन्तु भिखारी के

सम्बन्ध में मेरे संस्कार कुछ ऐसी ही तर्कहीनता तक पहुँच चुके हैं, जहाँ से अन्धविश्वास की सीमारेखा दूर नहीं रह जाती।

बचपन से बड़े होने तक माँ न जाने कितनी व्याख्या—उपव्याख्याओं के साथ इस व्यवहार—सूत्र को समझाती रही हैं कि हमारी शिष्टता की परीक्षा तब नहीं हो सकती, जब कोई बड़ा अतिथि हमें अपनी कृपा का दान देने घर में आता है, वरन् उस समय होती है, जब कोई भूला—भटका भिखारी द्वार पर खड़ा होकर हमारी दया के कण के लिए हाथ फैला देता है।

माँ के जीवन—काल में ऐसे—अनेक अवसर आए होंगे, जब मुझे सीखा हुआ पाठ स्मरण नहीं रहा: पर जब से अप्रसन्न होने की सीमा के पार पहुँच चुकी हूँ, तब से मुझे भूला हुआ भी सारी सूक्ष्म व्याख्याओं के साथ याद आने लगा है।

भिखारी की आवश्यकता से अधिक मुझे अपनी शिष्टता की परीक्षा का ध्यान था। निरूपाय उठना पड़ा। कई बार पुकारने के उपरान्त पुकारने वाली मूर्तियाँ पत्तों में दरिद्र नीम ही से छाया—याचना करने चल पड़ी थीं। ए.ओ. आदि अपरिचय—बोधक संज्ञा में अपना आमन्त्रण पहचान कर जब वे लौंटी, तब उनके प्रति पग पर मेरा कौतूहल पैर बढ़ाने लगा। चर्म के आवरण में से अपना विद्रोह प्रकट करने वाले अस्थि—पंजर के लिए फटे लम्बे कुर्ते को दोहरा कारागार बनाए 11—12 वर्ष का बालक लाठी को एक ओर से थामे आगे—आगे आ रहा था और ऊँची धोती और मैली बंडी में अपने कंकाल को यथासम्भव मुक्ति दिये एक अन्धा लाठी के दूसरे छोर के सहारे टटोल—टटोल कर बढ़ते हुए पैरों से उसका अनुसरण कर रहा था।

खेत में लकड़ी पर औंधाई हुई मटकी जैसे सिर को हिलाते हुए प्रौढ़ बालक ने वृद्ध युवक को आगे कर न जाने क्या बताया; पर जब उसने ऊपर मुख उठाकर नमस्कार किया, तब ऐसा जान पड़ा मानो नमस्कार का लक्ष्य खजूर का पेड़ है। जीवन में पहली बार मेरा मन प्रश्न के उपयुक्त शब्दों की खोज में भटक कर उस नेत्रहीन के सामने मूक—सा रह गया।

धूल के रंग के कपड़े और धूर भरे पैर तो थे ही, उस पर उसके छोटे—छोटे बालों, चपटे—से माथे, शिथिल पलकों की विरल बरूनियों, बिखरी—सी भौंहों, सूखे, पतले ओठों और कुछ ऊपर उठी हुई टुड्डी पर राह की गर्द की एक पर्त इस तरह जम गयी थी कि वह आधे सूखे क्ले मॉडल के अतिरिक्त और कुछ लगता ही न था। दृष्टि के आलोक से शून्य छोटी—छोटी आँखें कच्चे काँच की मैली गोलियों के समान चमकहीन थीं; जिनसे उस शरीर की निर्जीव मूर्तिमत्ता की भ्रान्ति और भी गहरी हो जाती थी।

कदाचित् इसी कारण उसके कण्ठ—स्वर ने मुझे अज्ञात—भाव से चौंका दिया।

इस वर्ग का जीवन खुली पुस्तक जैसा रहता है, अतः महान् ही नहीं, तुच्छतम आवश्यकता के अवसर पर भी उसकी कथा आदि से अन्त तक सुना देना सहज हो जाता है। इसके विपरीत हमारा जटिल—से—जटिलतम होता हुआ अन्तर्जगत् और कृत्रिम बनता हुआ जीवन ऐसी स्थिति उत्पन्न किये बिना नहीं रहता, जिसमें बाहर के बगुलेपन को भीतर की सड़ी—गली मछलियों से सफेदी मिलने लगती है। इसी से हमारी तारतम्यहीन कथा अधिकाधिक अकथनीय बनती जाती है और सुख—दुख की सरल मार्मिकता निर्जीव होने लगती है। हम सहज—भाव से अपनी



उलझी कहानी कह नहीं सकते। अतः जब कहने बैठते हैं, तब कल्पना का एक-एक तार सत्य की अनेक झंकारों की भ्रान्ति उत्पन्न करके उसे और अधिक उलझाने लगता है।

अन्धे अलोपी की कथा में न मनोवैज्ञानिक गुथियाँ हाथ लगीं और न समस्याओं की भूलभूलैया प्राप्त हुई। हाँ, उसकी दैन्य भरी वाचालता से पता चला कि चक्षु के अभाव की पूर्ति उसकी रसना ने कर ली है और इस प्रकार पंच ज्ञानेन्द्रियों में चाहें ज्ञान का उचित विभाजन न हो सका; पर उसके परिमाण का सन्तुलन नहीं बिगड़ा।

उसका पिता काष्ठी कुलावतंस रहा, पर बहुत दिनों तक अपने भावी वंशधर की प्रतीक्षा करने के उपरान्त उसे चायक के रूप में अलोपीदेवी के द्वार पर उपस्थित होना पड़ा। अलोपीदेवी कदाचित् उस उदार सूम के समान थीं जो अपने दानी होने की ख्याति के लिए दान करता है, याचक ही आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं। उनके मन्दिर से एक अखंडित मनूष्य-मूर्ति भी न निकल सकी। एक पुत्र दिया, वह भी नेत्रहीन। माँ-बाप ने उनके दान को उन्हीं के चरणों पर फेंक आने की कृतघ्नता तो नहीं दिखाई; पर उनकी कृपणता की घोषणा कर अन्य याचकों को सावधान करने के लिए उसका नाम रख दिया अलोपीदीन।

वही अलोपीदीन अब तेईस वर्ष का हो चुका है और काष्ठी पिता अन्धे पुत्र से पितृ-ऋण का ब्याज-मात्र चुका कर मूल को अपनी सेवा से चुकाने के लिए पितरों के दरबार में चला गया है। माँ तरकारियाँ लेकर फेरी लगाती है; पर पुत्र को अच्छा नहीं लगता कि जवान आदमी बैठा रहे और बुढ़िया मर-मर कर

कमावे। इसी से शाक—तरकारियों के तत्ववेत्ता तारु से यहाँ की चर्चा सुन, वह काम की खोज में निकल पड़ा है।

ऐसे आश्चर्य से मेरा कभी साक्षात् नहीं हुआ था। जीवन से अनजान किशोरों की संख्या कम नहीं, जो सुख के साधनों के लिए उस माँ से झगड़ते हैं, जिसकी उँगलियों के पोर सिलाई करते—करते छलनी हो चुके हैं। कुलबन्धुओं के समान आँसू पीने वाले युवकों का अभाव नहीं; जिनका पौरुष न दरिद्र पिता का सब कुछ छीन लेने में कुण्ठित होता है और ने भिक्षावृत्ति से मूर्छित। अपनी पराजय को विजय मानने वाले ऐसे पुरुषों से भी समाज शून्य नहीं, जो छोटे बच्चों को छोड़कर दिन—दिन भर परिश्रम करने वाली पत्नियों के उपार्जित पैसों से सिनेमा—घरों की शोभा बढ़ा आते हैं।

साधारणतः आज के पुरुष का पुरुषार्थ विलाप है। जितने प्रकार से, जितनी भाव—भंगियों के साथ, जितने स्वरों में वह अपने निराश जीवन का मर्सिया गा सके, अपनी असमर्थता का स्यापा कर सके उतना ही वह स्तुल्य है और उतना ही अधिक पुरुष नाम के उपयुक्त है।

अन्धी आँखों को आकाश की ओर उठाकर अपने पुरुषार्थ की दोहाई देने वाले अलोपी को ऐसी परम्परा के न्यायालय में प्राण दण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिल सकता था।

कुछ प्रकृतिस्थ होकर मैंने प्रश्न किया— ‘तुम यहाँ कौन—सा काम कर सकते हो ? अलोपी पहले से ही सोच—समझकर आया था’— वह देहात के खेतों से सस्ती और अच्छी तरकारियाँ लायेगा—मेरे लिए और छात्रावास की विद्यार्थिनियों के लिए।

अपने जीवनव्यापी अँधेरेपन में वह ऐसा व्यवसाय में उलझा हुआ कर्तव्य किस प्रकार सँभाल सकेगा, यह पूछने का अवकाश न देकर अलोपी ने अपने फुफेरे भाई रग्घू की ओर संकेत कर बताया कि उन दोनों के सम्मिलित पुरुषार्थ के कठिनतम कार्य भी सम्भव होते रहे हैं।

प्रस्ताव अभूतपूर्व था; पर मैं भी कुछ कम विचित्र नहीं, इसी से रग्घू और अलोपी अपने दुर्बल कन्धों पर कर्तव्य का गुरु—भार लाद कर लौटे।

दूसरे दिन सबेरे ही एक हाथ से रग्घू को लाठी का छोर थामे और दूसरे से सिर पर रखी बड़ी—सी छाबड़ी सँभाले हुए अलोपी, ‘मालिक हो! मालिक हो!’ पुकारने लगा।

मुझे क्या—क्या पसंद है यह जानने के लिए जब वह अनुनय—विनय करने लगा, तब मैं बड़ी कठिनाई में पड़ी। कुछ तरकारियाँ डाक्टरों ने मेरे पथ्य की सूची में नहीं रखी हैं और शेष के लिए सदा से यही नियम रहा है कि जो भक्तिन के विवेक को रूचे, वह मुझे स्वीकृत हो। फिर जिस वर्ष में, कुछ महीने दही पर, कुछ फल पर और कुछ खिचड़ी, दलिया आदि पथ्य पर बिताने पड़े हों, वह रूचि के सम्बन्ध में वीतराग हो ही जाता है। पर अलोपी को निराश न करने के लिए मैंने वह सब ले लिया, जिसे वह मेरे लिए ही लाया था। पैसे देते समय अलोपी ने कहा—वह महीने पर लेगा। जब मैंने अपने भूल जाने की सम्भावना और हिसाब लिखने की विरक्ति की व्याख्या आरम्भ की, तब उसने बहुत विश्वास के साथ समझाया कि वह दस तक पहाड़े और पहली किताब के विद्वान तारु की सहायता से मेरा हिसाब ठीक रखेगा। छात्रावास का वहाँ की मेट्रन रखेंगी ही। वहाँ इस युगल

मूर्ति को लेकर जो विनोदात्मक कोलाहल मचा, उसके सम्बन्ध में 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' कहना ही ठीक होगा; पर दो-चार दिन में ही अलोपी सबकी ममता का पात्र बन गया। उसे जो स्वच्छन्दता प्राप्त थी, वह दूसरे नौकरों को मिल ही नहीं सकती थी। मेस के लिए आँगन के एक कोने में वह पैर फैलाकर बैठता और तौलकर लाई हुई तरकारी फिर वहाँ के बड़े तराजू पर तौलने लगता। उसका स्पर्श—ज्ञान इतना बढ़ गया था कि लौकी, कद्दू, कटहल आदि को हाथ में लेते ही वह उनका तौल बता देता था। तुलाते—तुलाते वह शाक तरकारियों के प्रकार और खेतों के सम्बन्ध में, महराजिन, बारी आदि को न जाने कितना ज्ञातव्य बताता चलता था। प्रायः छोटी बालिकाएँ उसे घेर कर चिड़ियों की तरह चहकती ही रहती थीं। उनके लिए वह अमरूद, बेर आदि भी लाने लगा, जिनके दाम के सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। एक दिन जब कालेज के फल वाले ने शिकायत की कि अन्धा फल लाकर बच्चों को बाँटता है, जिससे उसके व्यापार को हानि पहुँचती है, तब मैंने अलोपी से पूछा। उसने दाँत से जीभ की नोक दबाकर सिर हिलाते हुए जो उत्तर दिया, उसका भावार्थ था कि दाम उसे मिल जाता है। फिर वह स्कूल के समय तो आता नहीं, अतः फल वाले की उससे क्या हानि हो सकती है!

बालिकाएँ न अलोपी को झूठा ठहरा सकती थीं, न मेरे सामने झूठ बोल सकती थीं; अतः वे मौन रहीं। मेरे अनुचित—उचित सम्बन्धी व्याख्यान के उत्तर में अलोपी ने मैली पिछौरी के छोर से धुँधली आँखें पोंछते—पोंछते बताया कि उसकी एक आठ—नौ वर्ष की चचेरी बहिन मर चुकी है। इन

बालिकाओं के स्वर में उसे बहिन की भ्रान्ति होने लगती है, इसी से अपनी दरिद्रता के अनुरूप दो—चार अमरूद, बेर, जामुन आदि ले आता है। उसके देहात में तो ऐसी चीजों का कोई दाम नहीं लेता, फिर वह कैसे जानता कि शहर में ऐसे देना बुरा माना जाता है। दाम देकर खरीदता, तो लेना किसी तरह उचित भी हो सकता था। पर वे फल उसे तरकारियों के साथ घलुए में मिल जाते हैं। इनसे पैसे बनाने की बात सोचकर उसका मन जाने कैसा—कैसा होने लगता है। उन्मुख अलोपी के मुख का भाव देखकर मैं अपने डपोरशंखी न्याय का महत्व समझ गयी और तब मेरा मन अपने ऊपर ही खीझ उठा। कहना व्यर्थ है कि अलोपी को अपने सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं करना पड़ा।

अलोपी के नेत्र नहीं थे, इसी से सम्भवतः वह न प्रकृति के रौद्र रूप से भयभीत होता था और न उसके सौन्दर्य से बहकता था। मूसलधार वृष्टि जब बर्फ के तुफान की भ्रान्ति उत्पन्न करती, बिजली जब लपटों के फव्वारे—जैसी लगती और बादलों के गर्जन में जब पर्वतों के बोलने का आभास मिलता, तब रगधू तो चलते—चलते बाहर से आँखें छिपा लेता, पर भीगे चिथड़े के गुड्डे के समान अलोपी नाक की नोक से चूते हुए पानी की चिन्ता न कर, भीगी उँगलियों से फिसलती लाठी थामे और हरे खेत के खण्ड जैसी छाबड़ी सँभाले इस तरह पाँव रखता, मानो उन्हें आज ही पृथ्वी का पूरा परिचय प्राप्त करना है। एक बार भी कीचड़ में पैर पड़ जाने पर रगधू की खैर न थी, क्योंकि अलोपी आँख वाले के पथ—प्रदर्शन में ऐसी भूल अक्षम्य समझता था। जब शीत बर्फीले तारों का व्यूह—सा रच देती और पक्षाघात की साँस—जैसी हवा बहती, तब रगधू पतले कुरते में मृगी के रोगी के समान हिलता और दाँत बजाता चलता; पर अलोपी सारी शक्ति से ठिठुरे ओठों

के कपाट बन्द किए और सर्दी से नीले नाखून और ऐंठी उँगलियों वाले पैरों को तोल-तोलकर रखता हुआ आता। ग्रीष्म में जब धूल ऐसी जान पड़ती, मानो कोई पृथ्वी को पीस-पीस कर उड़ाये दे रहा है और लू जलते हुए व्यक्ति की तरह चीत्कार करती हुई, इस कोने से उस कोने में दौड़ती फिरती, तब हाथ में आँखों पर ओट किये हुए रगधू के जल्दी-जल्दी उठते हुए पैर मुझे भाड़ में नाचते हुए दानों का स्मरण दिलाते थे। पर अलोपी पलकें मूँदकर आँखों के अंधकार को भीतर ही बन्दी बनाता हुआ अपने हर पग को इतनी धीरता से जलती धरती पर रखता था, मानो उसके हृदय की ताप नापता हो। बसन्त हो या होली, दशहरा हो या दीवाली, अलोपी के नियम में कोई व्यतिक्रम कभी नहीं देखा गया।

एक बार जब अपनी लम्बी अकर्मण्यता पर लज्जित हमारे हिन्दू-मुस्लिम भाई वीरता की प्रतियोगिता में सक्रिय भाग ले रहे थे, तब अलोपी पहले से दुगनी बड़ी डलिया में न जाने क्या-क्या भरे और एक बड़ी गठरी रगधू की पीठ पर भी लादे, सुनसान रास्ते से आ पहुँचा। उसके दुस्साहस ने मुझे विस्मित न करके क्रोधित कर दिया। 'तुम हृदय के भी अन्धे हो, ऐसी अँधेरी गलियों में प्राण देकर कुछ स्वर्ग नहीं पहुँच जाओगे' आदि-आदि स्वागत-वचनों के उत्तर में अलोपी बैंगन-लौकी टटोलने लगा। मेरे आँगन में तरकारियों का टीला निर्माण कर, वह वैसे ही मूक-भाव से छात्रावास की ओर चल दिया। वहाँ से लौटकर जब वह सूखी आँखें पोंछता और ठिठकता-सा सामने आ खड़ा हुआ, तब मेरा क्रोध बरस कर मिट चुका था और मन में ममता की सजलता व्याप्त थी!

मेरे कण्ठ में आश्वासन का स्वर पहचानकर उसने रूक—रूक कर बताया कि वह दो दिन के लिए तरकारियाँ ले आया है। मेट्रन से उसे ज्ञात हो गया था कि उनके भंडार—घर के अचार समाप्त हो चुके हैं और बड़ियों में फफूँदी लग गई है। केवल दाल से तो अलोपी जैसे व्यक्ति ही रोटी खा सकते हैं, अतः वह देहात से यह सब खरीद कर बेचता—बेचता यहाँ आ पहुँचा। उस बिना आँखों वाले आदमी को कौन सतायेगा; पर जब मेरी आज्ञा नहीं है, तब वह घर से बाहर पैर नहीं रख सकता। अब दो दिन के लिए चिन्ता नहीं है, फिर तब तक यह झगड़ा समाप्त हो ही जायेगा। अलोपी को ऐसे समय भी रोक रखना सम्भव नहीं हो सका, क्योंकि बूढ़ी माँ की रक्षा का भार उस पर था।

मैं बरामदे में हूँ या नहीं, यह अलोपी देख न सकता था; पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसने आते—जाते उस दिशा में नमस्कार न कर लिया हो।

अनेक बार मैंने खाली डलिया के साथ नीम के नीचे बैठे अलोपी को भक्तिन से बहुत मनोयोग पूर्वक बातें करते देखा था। वार्तालाप का विषय भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहता था। मुझे करेला अच्छा लगता है या कटहल, कचनार की कली पसन्द है या सहजन की फली, मेथी का साग रुचिकर होता है या पालक का, मीठा नींबू लाभदायक है या सन्तरा, आदि प्रश्नों पर गम्भीरता से वाद—विवाद चलता।

एक बार की घटना अपनी क्षुद्रता में भी मेरे लिए बहुत गुरु है। मैं ज्वर से पीड़ित थी। कई दिनों तक बरामदे को नमस्कार कर अलोपी ने रग्घू से कहा—जान पड़ता है इस बार गुरुजी बहुत गुस्सा हो गयी हैं। पहले की तरह कुछ पूछती ही नहीं; पर जब

उसे ज्ञात हुआ कि मैं बीमारी के कारण बाहर आ ही नहीं सकती, तब वह बहुत चिन्तित हो उठा।

दूसरे दिन सन्देश मिला कि अलोपी मुझे देखने की आज्ञा चाहता है। उतने कष्ट के समय भी मुझे हँसी आये बिना न रह सकी। अन्धा अलोपी असंख्य बार आज्ञा पाकर भी मुझे देखने में समर्थ कैसे हो सकता था। पर अलोपी भीतर आया और नमस्कार कर टटोलता—टटोलता देहली के पास बैठ गया। फिर अपनी धुँधली, शून्य आँखों की आर्द्रता बाँह से पोंछकर पिछौरी के एक छोर में लगी गाँठ खोलते हुए उसने अपराधी की मुद्रा से बताया कि वह स्वयं जाकर अलोपी देवी की विभूति लाया है। एक चुटकी जीभ पर रख ली जाय और एक माथे पर लगा ली जाय, तो सब रोग—दोष दूर हो जायगा। कहने की इच्छा हुई—जब देवी तुम्हारा ही पूरा न कर सकीं, तब मेरा क्या करेंगी; पर उनके वरदान की गम्भीरता ने मुख से कुछ न निकलने दिया। अलोपीदेवी की दिव्यता प्रमाणित करने के लिए अलोपीदीन का कर्तव्य में वज्र और ममता में मोम के समान हृदय ही पर्याप्त होना चाहिए। उसके निकट जिसका परिचय स्वर—समूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता, उस व्यक्ति के प्रति इतनी सहानुभूति भूलने की वस्तु नहीं।

अलोपी को हमारे यहाँ आये तीसरा वर्ष चल रहा था। उसका कुछ भरा हुआ—सा कंकाल कुरते से सज गया, सिर पर जब—तब साफा सुशोभित होने लगा और ऊँची धोती कुछ नीचे सरक आयी साधारणतः महीने में 80 रु. से कुछ अधिक की ही शाक—तरकारियाँ आती थीं। दाम चुकाकर और रग्घू को कुछ देकर भी अलोपी के पास इतना बच रहता था, जिससे वह अपनी



माँ के साथ सुख से रह सके। और एक दिन तो रग्घू ने हँसते-हँसते बताया कि दादा का रुपया उसकी माई गाड़कर रखने लगी है।

अलोपी के अँधेरे जीवन का उपसंहार भी कम अन्धकारमय न हो, इसका समुचित प्रबन्ध विधाता कर चुका था। एक दिन मेरे निकट बैठकर अपने-आप से संसार-चर्चा करती हुई भक्तिन ने सुनाया-अलोपी अपना घर बसा रहा है। मैं इतनी विस्मित हुई कि भक्तिन की कथाओं के प्रति सदा की उपेक्षा भूलकर क्या कह उठी और तब भक्तिन ने उसी प्रसन्न-मुद्रा में मेरी ओर देखा, जिससे भीष्म ने रथ का पहिया ले दौड़ने वाले कृष्ण को देखा होगा। पता चला, उसके कथन का प्रत्येक अक्षर बिना मिलावट का सत्य है।

एक काछिन, जो दो पतियों को मुक्ति दे आई है, अन्धे के लिए स्वर्ग की रचना करना चाहती है; पर अलोपी की माँ अपने वरदान में मिले पुत्र को अब फिर दान में देना स्वीकार नहीं करती।

गर्मियों की छुट्टियों के बाद लौटकर सुना कि अलोपी की माँ अलग रहने लगी और नयी पत्नी ने आकर घर सँभाल लिया। फिर एक बार उसे देखने का अवसर भी मिला। मझोले कद की सुंगठित शरीर वाली प्रौढ़ा थी। देखने में साधारण-सी लगी; पर उसके कण्ठ में ऐसा लोच और स्वर में ऐसा आत्मीयता भरा निमन्त्रण था, जो किसी को भी आकर्षित किये बिना नहीं रहता, और कुछ विशेष चमकदार आँखों में चालाकी के साथ-साथ ऐसी कठोरता झलक जाती थीं, जो उस पर विश्वास करना असम्भव

नहीं, तो कठिन अवश्य कर देती थी। अलोपी उसे कण्ठ—स्वर से ही जानता था, इसी से कदाचित् वह विश्वास कर सका।

रग्घू घर का भेदिया था; इसी से सब जान गये कि उसकी नई भौजी को रूपये की चर्चा के अतिरिक्त और कोई चर्चा नहीं सुहाती। कभी वह जानना चाहती है कि अलोपी ने गाढ़े दिन के लिए कुछ बचा रखा है या नहीं, कभी पूछती है कि उसके पछेली और झुमके किस कोने में गाड़कर रख दिए जायँ।

अलोपी इस ढहते हुए स्वर्ग में छः महीने रह सका। फिर सुना कि उसकी चतुर पत्नी सब कुछ लेकर उसे माया—पाश से सदा के लिए मुक्ति दे गई है।

वह बेचारा तो कई दिन तक विश्वास ही न कर सका। खुदे गडढे को टटोल—टटोल कर देखता और फिर तार पर बैठ कर उसकी प्रतीक्षा करने लगता है।

जब परोपकारी पड़ोसियों ने उसके विश्वास की शिला को युक्तियों की एक—से—एक मर्म भेदी सुरंगों से उड़ा दिया, तब वह बीमार पड़ गया। पर, निरन्तर कर्मयोग से दीक्षित पुलिस को यह शुभ समाचार देने की चर्चा चलते ही वह प्रशान्त निराशा—भरी दृढ़ता से कहने लगता—‘अपनी स्त्री की हुलिया लिखवाकर पकड मँगाना नीच का काम है।’

अलोपी कुछ अच्छा होने पर आने लगा; पर उसमें पहले जैसा जीवन नहीं रह गया था। पैर घसीट—घसीट कर चलता, हाथ से लाठी छूट—छूट पड़ती। एक बार मेरे बरामदे की दिशा में नमस्कार करते समय छाबड़ी नीचे आ रही। अलोपी के सब साहस, सम्पूर्ण उत्साह और समस्त आत्मविश्वास को संसार का एक

विश्वास घात निगल गया है, यह सत्य होने पर भी कल्पना—जैसा जान पड़ता है।

अन्धे का दुःख गूँगा होकर आया था, अतः सान्त्वना देने वाले उसके हृदय तक पहुँचने का मार्ग ही न पा सकते थे। मेरे बोलते ही वह लज्जा से इस तरह सिकुड़ जाता, मानो उसके चारों ओर ओले बरस रहे हों, इसी से विशेष कुछ कह—सुनकर उसका संकोचजनित कष्ट बढ़ाना मैंने उचित न समझा। पर, अपने अपराध से अनजान और अकारण दण्ड की कठोरता से अवाक् बालक—जैसे अलोपी के चारों ओर जो अँधेरी छाया घिर रही थी, उसने मुझे चिन्तित कर दिया था।

उसकी माँ बड़ी मानता से प्राप्त अन्धे पुत्र का सब अपराध भूल गयी थी, पर हठी पुत्र ने अपने—आपको क्षमा नहीं किया, अतः उन दोनों का वह करुण—मधुर अतीत फिर न लौट सका।

मैं दशहरे का अवकाश घर ही पर बिता रहीं थी। अलोपी एक दिन तरकारियाँ देकर सन्ध्या समय तक मेस ही में बैठा रहा। कभी बड़ी ममता से तराजू को छूकर देखता, कभी बड़े स्नेह से पूसी की धनुषाकार पीठ को सहलाता और कभी विनोद से छोटी बालिकाओं को चिढ़ाने लगता। फिर जाते समय मेरी कुत्ती फलोरा को अपनी पिछौरी में बँधे मुरमुरे देकर, हिरनी सोना को मूली की पत्तियाँ खिलाकर और मेरे बरामदे को नमस्कार कर जो गया, तो कभी नहीं लौटा।

तीसरे दिन रोनेसे सूजी आँखों वाले रग्घू ने समाचार दिया कि उसका अन्धा दादा बिना उसे साथ लिए ही न जाने किस अज्ञात लोक की महायात्रा पर चल पड़ा।

ऐसे ही अचानक तो वह यहाँ भी आ पहुँचा था, इसी से विश्वास होता है कि वह बिना भटके ही अपने गन्तव्य तक पहुँच जायेगा।

बालक रग्घू के लिए दूसरे काम का प्रबन्ध कर मैंने अलोपी के शेष स्मारक पर विस्मृति की यवनिका डाल दी है; पर आज भी देहली की ओर देखते ही मेरी दृष्टि मानो एक छायामूर्ति में पुंजीभूत होने लगती है। फिर धीरे-धीरे उस छाया का मुख स्पष्ट हो चलता है। उसमें मुझे कच्चे काँच की गोलियाँ जैसी निष्प्रभ आँखें भी दिखाई पड़ती हैं और पिचके गालों पर सूखे आँसुओं की रेखा का आभास भी मिलने लगता है। तब मैं आँखें मल-मल कर सोचती हूँ—नियति के व्यंग से जीवन और संसार के छल से मृत्यु पाने वाला अलोपी क्या मेरी ममता के लिए प्रेत होकर मँडराता रहेगा ?

• • • • •

## 6. यहाँ रोना मना है

ममता कालिया

**लेखिका परिचय:**—ममता कालिया का जन्म 2 नवम्बर, 1940 को वृन्दावन में हुआ। शिक्षा नागपुर, मुम्बई, पुणे, इन्दौर और दिल्ली के विद्यालयों व विश्वविद्यालयों में हुई। इन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। ममता कालिया सन् 1960 से निरन्तर लिख रही है। कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक के अलावा इन्होंने समकालीन समाज में महिलाओं की स्थिति पर लेख, स्तम्भ आदि अधिक मात्रा में लिखा है।

इन्होंने अंग्रेजी में भी कविताएँ लिखी है। नारी मनोविज्ञान, सामाजिक विसंगतियों का बोध इनके लेखन की पहचान है। ममता जी ने नारी संवेदना के विविध पक्षों को अपनी रचनाओं में उजागर किया है। इनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं—छुटकारा, सीट नम्बर छह, उसका यौवन, प्रतिदिन, बोलने वाली औरत, चर्चित कहानियाँ। उपन्यास—बेघर, नरक दर नरक, एक पत्नी के नोट्स। इन्हें हिन्दी साहित्य परिषद, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान तथा रमणिका फाउंडेशन द्वारा पुरस्कृत किया गया है।

.....

### दृश्य एक

(लड़कियों का जमघट। हिल—हिलकर हँस रही है। घर के कमरे में ही झूला डला हुआ है। लड़कियाँ बारी—बारी से झूल रही हैं। सभी अठारह से बीस की उम्र के आस—पास हैं! किसी ने ओढ़ी पहनी हुई है, किसी ने सीधे पल्ले की धोती। एकाध लड़की ब्याही

हुई है। उनकी माँग भरी है, टिकुली लगी है, साज—श्रृंगार अन्य लड़कियों से ज्यादा। सब मिलकर गा रही हैं।)

**कालिन्दी:** नन्हीं—नन्हीं बुँदिया रे सावन का मेरा झूलना एक झूला डाला मैंने अम्मा के राज में हाँ अम्मा के राज में संग में सहेलियाँ रे हिल मिलकर मेरा झूलना। नन्हीं—नन्हीं बुँदिया रे सावन का मेरा झूलना।

**सहेली:** एक झूला डाला मैंने सासू के राज में हाँ, सासू के राज में

आधी—आधी रतियाँ चक्की का मेरा पीसना।

**समवेत:** नन्हीं—नन्हीं बुँदिया रे सावन का मेरा झूलना।

(सब लड़कियाँ खिलखिलाकर हँसती हैं। कालिन्दी की माँ का प्रवेश। साड़ी का आँचल सीधा। कस्बाई किस्म की स्त्री। व्यक्तित्व में सादगी और वात्सल्य।)

**माँ:** हप्पो, आज बस झूलना ही झूलना है या कुछ खाना पीना भी है। अजीब लड़की है यह। नाचने—गाने के आगे कुछ भाता ही नहीं है।

**सहेली:** मौसी यह बताओ तुम कालिन्दी को हप्पो क्यों कहती हो? यह भी कोई नाम हुआ, न तुक न मेल।

**माँ:** अरे नाम की मत पूछ। जब ये पैदा हुई तो एकदम गुलाबी गुलगुली सी थी। इसके भैया ने देखकर कहा, अम्मा ये तो इत्ती मुलायम है, इसे तो मैं हप्प कर जाऊँ। बस तभी से इसका नाम हप्पो पड गया।

**दूसरी सहेली:** मौसी जीजी को हप्पो न बुलाया करो। कल को ब्याह होगा तो यह नाम अच्छा लगेगा ?

**माँ:** अब ब्याह हो जाय चाहे बच्चे। हमारी तो यह हप्पा बिटिया ही रहेगी, है न। चलो तुम सब कुछ खा लो। मैंने पुए पकाये हैं।

(सब जाती हैं।)

## दृश्य दो

(घर में चहल-पहल। नाइन दीवारों पर हाथ के छापे लगा रही है। कुछ लड़कियाँ आम के पत्तों के बन्दनबार सजा रही हैं। कमरे के बीच दरी पर कुछ औरतें ढोलक बजाते हुए बन्नी गा रही हैं।)

**बन्नी गीत:** चाँद तारों से आयेगी बारात  
बन्ना जरा धीरे चलो।  
चाँद तारों से आयेगी बारात, बन्नी.....  
बन्नी तेरा झूमर सवा लाख का  
टोके पे छाई है बहार  
बन्नी जरा धीरे चलो—

**एक सहेली:** ए चाची ढोलक जरा कायदे की बजाओ, टनक नहीं रही है।

**दूसरी सहेली:** सबसे अच्छी ढोलक तो कालिन्दी खुद बजाती है।  
**पहली सहेली:** बस करो, अपने ब्याह में खुद थोड़े ही बजाएगी।  
लाओ मुझे दो।

(ढोलक टनकती है। बाहर चहल-पहल फिर आवाजे 'बारात आ गई, बारात आ गई।' लड़कियाँ एक दूसरी पर गिरती पड़ती बारात देख रही है।)

**पहली सहेली:** हाय दूल्हा कितना अच्छा है।

**दूसरी सहेली:** अचकन देखो उसकी, एकदम चकाचक।

**तीसरी सहेली:** साफा और कलगी तो उससे भी ज्यादा चमक रही है।

**पहली सहेली:** अरी, बन्नी को भी दिखा दो खिड़की से। नहीं मन की मन में रह जायेगी। जाने मिलन में कितनी देर है अभी।

(कालिन्दी, को लड़कियाँ खिड़की की ओर ठेलती हैं। वह हटती है। ब्याह की रस्में। फिर विदा। ताँगे के साथ-साथ नेपथ्य में धीमा-धीमा विदाई गीत। ताँगा आकर एक तंग गली के आखिरी मकान पर रुकता है।

एकदम पुराने ढंग का खस्ता हाल मकान। बाहर के हिस्से में गल्ले की दुकान। अन्दर सीलन, अँधेरा और घुटन। जैसे ही वर-वधू अन्दर पहुँचते हैं, लड़के के पिता हड़बड़ी में आते हैं।)

**पिता:** मोहन भई पोशाक जल्दी से उतार कर दे दे, बेफिजूल किराया चढ़ रहा है।

(मोहन सिर पर से साफा कलगी, बदन पर से अचकन और तलवार उतार कर दे देता है। पिता यह काम इतनी फुर्ती से करते हैं कि दूल्हे के शरीर पर केवल जाँघिया-बनियाड़ नहीं रह जाते हैं।)

(कालिन्दी, दूसरी कोठरी में औरतों के बीच घिरी बैठी है। मुँह दिखाई में औरतें एक-एक, दो-दो रुपया थमा रही हैं। सास बिलकुल पुलिस-मुद्रा में बैठी रकम बटोर रही है।)

**एक स्त्री:** बहू तो बड़ी सुन्दर पाई है मोहन की माँ। तुम्हारे घर में उजीता हो गया।

**दूसरी स्त्री:** और तो सब ठीक है, बस नाक कुछ टेढ़ी लग रही है।

**तीसरी स्त्री:** नाक कैसी भी हो, नकचढ़ी न हो, हमारी बहू की तरह।



- पहली स्त्री:** इसका नाम बड़ा मुश्किल है। कोई अच्छा सा नाम रखो।
- मोहन की माँ:** मुझे तो अपनी बहू बड़ी पसन्द आई। साच्छात लच्छमी।
- दूसरी स्त्री:** यही नाम अच्छा है, लक्ष्मी।

## दृश्य तीन

- मोहन:** क्यों अम्मा गुमसुम क्यों बैठी हो।  
(माँ और भी मुँह फुलाकर बैठ जाती है।)
- मोहन:** क्यों अम्मा गुमसुम क्यों बैठी हो।
- मोहन:** (पैर दबाते हुए ) अम्मा अब तुम्हें आराम करना चाहिए। काम धाम लक्ष्मी को सौंप कर बस रामायण बाँचा करो।
- माँ:** उस राएवाली को कुछ आये तब न। मैं तो पहले ही सुन आई थी, राए की छोरी, काम—काज में कोरी।
- मोहन:** (हेकड़ी में) तुम कहो तो अभी ठीक कर दू।
- माँ:** से तो मैं कर लूँगी। पर सौ बातों की एक बात, औरत को हमेशा दबाकर रखो।
- (मोहन कोठरी में जाता है। लालटेन के मद्धिम प्रकाश में कालिन्दी पुराने अखबार का एक फटा टुकड़ा पढ़ रही है। मोहन उसके हाथ से अखबार का टुकड़ा छीनता है।)
- मोहन:** बहुत हो चुकी पढ़ाई लिखाई। पहले बर्तन माँजना तो सीख लो।  
(कालिन्दी अबूझ सी उसे देखती रह जाती है।)

**मोहन:** (बिगड़कर) क्या बात है घर में कोई भी तुमसे खुश क्यों नहीं है?

**कालिन्दी:** (कुछ क्षण चुप, फिर शांत आवाज में) मैं भी तो खुश नहीं हूँ।

**मोहन:** (चिल्लाकर) तुम्हारी खुशी क्या होती है, बोलो तुम्हारी खुशी क्या चीज है। तुम क्या कोई लाट कलक्टर की औलाद हो।

**कालिन्दी:** (शांत मुद्रा, शिकायती स्वर) लाट कलक्टर की औलाद तो वे भी नहीं है।

**मोहन:** (क्रोध में) क्या कहा, जुबान लड़ाती है बदजात कहीं की। खबरदार मेरी माँ के लिए कुछ भी कहा तो—

(मोहन के चिल्लाने से घर के सभी लोग कोठरी के दरवाजे पर आ जाते हैं। मोहनी की माँ कमर पर हाथ धरे अन्दर आ जाती है। पिता देहलीज पर खड़े हैं। बड़ी बहू छमक-छमक चल कर सास के पास खड़ी हो जाती है। कोठरी के बीचों बीच गुस्से से थरथराता मोहन खड़ा है कालिन्दी मेमने की तरह मुँह लटकाये बैठी है। बाकी सबके चेहरे पर हिंस्र भाव)

**माँ:** आगरेवाली से बात पक्की हुई होती तो यह दिन न देखना पड़ता। रात दिन खटता है मेरा मोहन (रौने लगती है) कभी दिन त्योहार छुट्टी मिलती है तो यह चुड़ैल पीछे लग जाती है।

**जेठानी:** (हाथ मुँह पर रखकर) हाय मैं तो ऐसी डर गई। मैं कहीं भैयाजी को तो कभी आज तक चिल्लाते नहीं सुना, आज क्या हो गया। इत्ते बरस हो गए हमारे बियाह को। हमने तो ऐसी लड़ाई न कभी देखी न सुनी।

**माँ:** ऐसी लुगाई की जीभ तो कैंची से काटकर नाली में फेंक दे।

(सब के उकसाने पर मोहन, प्रदर्शन के अन्दाज में कालिन्दी की चोटी खींच उसका सिर दीवार से टकरा देता है। क्षण भर को पूर्ण अन्धकार के बाद प्रकाश। सुबह का समय। घर का हर सदस्य किसी न किसी काम में संलग्न। माँ सब्जी काट रही है। जेठानी चूल्हा जला रही है। कालिन्दी आँगन में नल के नीचे बर्तन माँज रही है। जेठानी के तीन बच्चे आँगन के पार ड्योढ़ी में खेल रहे हैं। एक दूसरे का हाथ पकड़ कर बच्चे बारी बदते हैं:

‘अक्कड़ भक्कड़ भम्भे भो

अरसी नब्बे

पूरे सौ,

सौ में लागा तागा

चोर निकल कर भागा।’

तभी डाकिया “पोस्टमैन” कहता हुआ, एक पोस्टकार्ड खुले दरवाजे के अन्दर डाल जाता है। बच्चे झपट्टा मारकर चिट्ठी उठा लेते हैं। उलट-पुलट कर देखते हैं। चिट्ठी का एक कोना फटा हुआ है।)

**चन्द्रभान:** चाची की है, रोए से आई है।

**सूरजभान:** चल चाची को दे आये।

**चन्द्रभान:** हम तो अम्मा को देंगे।

**त्रिलोकी** पहले बांच तो लो। बांच लेने में कौन हर्ज है।

सूरजभान चिट्ठी पढ़ता है। पोस्टकार्ड पर टेढ़ी-मेढ़ी लाइनें खींचकर, बिना किसी विराम-चिह्न के लिखा है।

**सूरजभान:** प्रिय बेटी हप्पो, राजी रहो आगे यहाँ का समाचार ठीक नहीं तुम्हारी मैया सोमवार रात सात बजे पेट के फोड़े में चीरा लगते ही स्वर्गवास कर गई बड़ी तकलीफ पाई मछली की तरह तड़प तड़प के पिरान निकले लल्ला बाबू तब से रोते हैं चिट्ठी को तार समझकर फौरन से पेशतर पहुँचो। तुम्हारे बाबू। (चिट्ठी पढ़ कर सूरजभान का सकपकाना। सब बच्चे डर जाते हैं।)

**त्रिलोकी:** यह तो जरूरी चिट्ठी है।

**चन्द्रभान:** ऐसा करें, चिट्ठी चुपके से राएवाली चाची के पास धर दें।

(बच्चों अन्दर जाते हैं। आँगन में राएवाली बैठी बर्तन माँज रही है। बच्चे उसके पास पोस्टकार्ड फेंककर भाग निकलते हैं, राएवाली चिट्ठी बड़े चाव से, राख भरे हाथों से ही उठा लेती है। चिट्ठी पढ़ती है। कुछ समय न आता। पलटकर डाकघर की मोहर देखती है। बाप की लिखावट चीन्हती है। सुन्न बैठी रह जाती है। सास का आँगन में प्रवेश। मुँह में पान की गिलोरी दबी है। कमर में चाभियों का गुच्छा।)

**मोहन की माँ:** तभी मैं कहुँ बरतन माँजते-माँजते संझा हो गई, आज क्या बात है। देखो तो यहाँ हाथ पर हाथ धरे बैठी सपने देख रही है।

(पैर से एक बरतन टनकाती है। राएवाली चेतना में लौटती है। “हाय मैया” कहकर वह एक हृदय विदारक चीख मारती है और

बेहोश लुढ़क जाती है। घर भर के लोग इकट्ठे हो जाते हैं। माँ का हाथ नचा-नचाकर बोलना 'हाय मैं तो इससे बोली भी नहीं। मुझे देखते ही ऐसी चिल्ला मारी है जैसे रेल का इन्जन हो।' जेठ की नजर पोस्टकार्ड पर पड़ती है। वे उठा कर पोस्टकार्ड पढ़ते हैं। संकेत से बताते हैं 'राएवाली की महतारी सरग सिधार गई।'

सब का सोच मग्न होना। मोहन के छोटे भाई का ब्याह आठ दिन बाद है।)

**माँ:** अब ये चली जायेगी पीहर, यहाँ काम कौन संभालेगा। अभी कुछ भी नहीं किया। कल रामचन्द्र का तिलक है।

**जेठ:** नहीं जी घर की बहू है। बहन बेटियाँ लाख आयें, जिम्मेदारी तो बहुओं की होती है।

**मोहन:** पर उसकी मैया मरी है। कायदे से जाना तो चाहिए उसे।

**माँ:** छोटे भैया के बियाह का कोई चाव नहीं है रे। और जो चली गई तो सूतक नहीं लग जायेगा। सूतक-पातक ये दो पाप कभी न करो। लौट कर काम छूने के काबिल न रहेगी। ब्याह के घर में काम ही काम।

**पिता:** और अब रोने से माँ तो वापस आ न जाएगी।

**जेठ:** और क्या। सूरजभान की माँ तो वैसे ही काम करने के काबिल नहीं है। उसके पैर में मोच आ गई है।

**माँ:** सीधी बात समझा दो उसे। घर के इतने बड़े काम मे बहू न हुई तो कितनी जगहँसाई होगी हमारी।

**मोहन:** ठीक है।(अन्दर जाता है। अन्दर कोठरी में

कालिन्दी आँचल मुँह में दबाये सिसक रही है। उसे देखकर आँखें पोंछती है, फिर सुबकते हुए कहती है।)

**कालिन्दी:** हमें इसी वक्त राए पहुँचा दो। हमारा जी उड़ा—उड़ा जा रहा है।

**मोहन:** तो मैं क्या करूँ। जब तक वहाँ से कोई लिवाने नहीं आएगा, हम नहीं भेजेंगे।

**कालिन्दी:** यह कोई न्योतनी तो है नहीं, अम्माँ उठ गई हम बैठें रह जायँ

**मोहन:** कल रामचन्द्र का तिलक है, तुम नहीं जा सकतीं।

**कालिन्दी:** मैं तो जरूर जाऊँगी, चाहे कुछ हो जाय। सब कहेंगे, माँ के मरने में भी नहीं आई।

**मोहन:** सोच लो। यह घर या वह घर। मेरे भाई का ब्याह है। इस मौके पर चली गई तो वापस घुसने न दूँगा। पड़ी रहना सारी उमर बाप के द्वारे।

**कालिन्दी:** हटो यह क्या मजाक है, ऐसे में भी कोई रोकता है क्या ?

**मोहन:** मजाक करते होंगे तेरे यार। हम तो साफ बात करते हैं। रहना है तो जैसे हम रखें वैसे रहना होगा

(कालिन्दी गाल पर ऐसे हाथ रखती है मानो उसे तमाचा पड़ा हो। उसके होंठ फड़फड़ाते हैं, बोल नहीं पाती मोहन पीट फेर कर सो जाता है। कालिन्दी की आँखों के आगे माँ के दृश्य—चित्र आते—जाते हैं, तरकारी काटती, पराठे सेंकती, हँसती, बैठती, कालिन्दी के माथे का पसीना पोंछती अम्माँ )

## दृश्य चार

(अगला दिन। मेहमानों की चहल-पहल। कालिन्दी दौड़-दौड़कर काम कर रही है। कभी किसी के पैर छू रही है। कभी किसी को हाथ जोड़ रही है, कभी पत्तल परोस रही है, कभी दरियाँ बिछा रही है।)

**एक मेहमान:** मोहन की अम्माँ, बहू कुछ सुस्त लग रही है।  
**मोहन की माँ:** (तणक से) कल से बुखार चढ़ा है पर देवर के तिलक का चाव तो देखो, जुटी हुई है काम में। सबेरे से मुँह में दाना नहीं डाला है।

**जेठानी:** (ठसके से) नई साड़ी मिलने का चाव जो करा ले।

**मोहन की माँ:** (गुहराती है) राएवाली आ, एक बालूशाही खा ले। देख कैसी भुरभुरी बनी है।

**दूसरी मेहमान:** अरे तो उसे कुछ खिलाओ।

(कालिन्दी वहाँ आस-पास कहीं नहीं है। 'राएवाली', 'राएवाली' कहती हुई मोहन की माँ उसकी कोठरी की ओर चल देती हैं इस बीच कई लड़कियाँ, औरतें ढोलक लेकर दरी पर बैठ जाती हैं। ढोलक बजाई जाती है। एक औरत बन्ना का स्वर उठाती है। दूसरी स्त्रियाँ स्वर पकड़ती हैं। तभी एक स्त्री 'राएवाली' कहाँ है, उसे बुलाओ, उसका गला बड़ा अच्छा है। वह गायेगी। कह उठती है।)

**दूसरी स्त्री:** जाने दो थकी होगी। कमर सीधी कर लेगी।

**तीसरी स्त्री:** वाह देवर के ब्याह में नहीं गायेगी तो कब गायेगी। बुलाओ राएवाली को।

(कोठरी में राएवली बिस्तर पर आँखों पर बाँह रखे निढाल पड़ी है। सास एक क्षण नरमी से देखती है फिर उसकी मुद्रा कठोर हो जाती है।)

**मोहन की माँ:** राएवाली मेरे घर में आज के दिन असगुन न मना। कल अपने घर जाकर जी भर रोइयो। खबरदार जो यहाँ आँसू गिराए।(तभी दो चपल लड़कियाँ ओढ़नी संभालती दौड़ी-दौड़ी आती हैं—‘मौसी राएवाली भाभी कहाँ हैं उन्हें बुलाओ, गीत गाएँगे।’)

**मोहन की माँ:** (बनावटी दुलार से).....उठ बहू देख कितने प्यार से बुला रही हैं।

(कालिन्दी उठकर लटपटाते कदमों से जाकर गाने-वालियों में बैठ जाती है। बन्ने के स्वर हवा में तेज हो जाते हैं, लड़कियाँ उसे कोंचती हैं, ‘गाओ न भाभी यह बन्ना तो तुम्हें आता है।’)

**कालिन्दी:** (भर्राये गले से) नहीं, तुम गाओ, मैं संग बैठी तो हूँ।

(कुछ औरतें उसकी ओर ढोल सरका देती हैं। वह हाथ उठाती है, पर हाथ नहीं उठते। सास बनौली आँखों से घूरती है। आँखों ही आँखों में गुर्राहट। कालिन्दी आँख मूँदकर ढोलकर पर थाप लगाती है।

इस दृश्य में एक ओर उमंग भरा बन्ना का स्वर है दूसरी ओर ढोलक पर थाप पड़ने से नेपथ्य में मात्र एक शब्द भर्राई आवाज में, अम्मा, अम्मा, अम्मा निकल रहा है।)



(अचानक राएवली ढोलक छोड़कर नाचने वालियों में जा मिलती है। ढोलक अन्य स्त्री संभाल लेती है। राएवली नाचना शुरू करती है। नाचती जाती है नाचती जाती है। अन्त में चक्कर पर चक्कर काटती हुई नाचती है। साथ नाचने वाली लड़कियाँ थक-कर बैठ जाती हैं। अकेली राएवली चक्करदार नाच नाचती चली जाती है। उसकी आँखों के सामने पूरा दृश्य उल्टा सीधा, गड्ढमड्ढ होकर तेजी से दौड़ता है। नाचते-नाचते राएवाली भरी महफिल में धड़ाम से गिर जाती है। बन्ना के बोल तेजी से उभरते हैं।)

• • • • •

## 7. योग्यता और व्यवसाय का चुनाव

माधवराव सप्रे

**लेखक परिचय:**—तेजस्वी और जुझारू पत्रकार माधवराव सप्रे का जन्म मध्यप्रदेश के सागर जिले के पथरिया गाँव में सन् 1871 को हुआ था। सप्रे जी की शिक्षा क्रमशः बिलासपुर और जबलपुर में संपन्न हुई। हिन्दी भाषा के परिष्कार के साथ-साथ पाठकों में साहित्यिक संस्कार पैदा करने का संकल्प लेकर इन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम रखा। छतीसगढ़ मित्र नामक मासिक पत्र से इन्होंने पत्रकारिता की शुरुआत की। इसके बाद उन्होंने नागपुर के देश सेवक प्रेस में नौकरी करते हुए हिन्दी ग्रन्थ माला के प्रकाशन की योजना बनाई। इसके माध्यम से उन्होंने राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में जनसाधारण के अभियान की भूमिका तैयार की। इनकी प्रेरणा व सहयोग से माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पादन में कर्मवीर पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ।

पत्रकारिता के साथ-साथ सप्रे जी ने स्वदेशी आन्दोलन और बायकॉट, जीवन संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय; हिन्दी दासबोध और भारतीय युद्ध जैसे ग्रंथों की रचना की। इन्होंने अदम्य राष्ट्रीय चेतना, गौरवशाली सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा के बीच जीवन्त और प्रखर पत्रकारिता का इतिहास रचा। राष्ट्रभाषा और देश के प्रति समर्पण का भाव इनके मन में अधिक गहरा था।

.....

प्रत्येक मनुष्य के लिए किसी-न-किसी व्यवसाय, रोजगार, धन्धे अथवा पेशे की आवश्यकता है और अपने लिए बुद्धिमत्तापूर्वक व्यवसाय चुनने में ही मनुष्य जीवन का सफल होना अवलम्बित है। ऐसे बहुत ही थोड़े-हजारों में एक-मनुष्य होंगे जिन्हें जीवन-निर्वाह के लिए कुछ उद्योग नहीं करना पड़ता; अर्थात् जिनके पास आवश्यकता से बहुत ही अधिक सम्पत्ति होती है। परन्तु ऐसे मनुष्यों को अपने लिए कुछ-न-कुछ कार्य चुनने की आवश्यकता पड़ती है। इसका कारण यह है कि ऐसे मनुष्यों को उदर-पूर्ति के लिए भले ही कष्ट न उठाना पड़े, परन्तु अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए तथा उसे आलस्य से बचाने के लिए, इच्छा न होने पर भी कुछ काम करना ही पड़ता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य-जीवन काम करने के लिए ही बनाया गया है और धनवान् तथा धनहीन कोई भी मनुष्य इससे बच नहीं सकता।

यद्यपि इस बात की सत्यता निर्विवाद सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य को कुछ-न-कुछ व्यवसाय का कार्य करना ही पड़ेगा, तथापि बहुत-से युवकों को इस बात से डर और घृणा होती है। वे अपने माता-पिता का पिंड नहीं छोड़ना चाहते और रोटी के प्रश्न को स्वयं हल करना बेइज्जती समझते हैं। परन्तु उन्हें भी कभी-न-कभी, जल्दी अथवा देरी से, कुछ कार्यारम्भ करना ही पड़ता है। इसलिए प्रत्येक युवक का, जो संसार में प्रवेश करके विजय कामना रखता हो, यह कर्तव्य है कि वह शीघ्र ही इस बात का निश्चय कर ले कि वह अपनी सारी शक्तियों को किस काम में लगाएगा। अनिश्चित अवस्था में रहकर विलम्ब करने और व्यर्थ समय खोने से कुछ लाभ न होगा।

बहुत—से मनुष्य सुख का अर्थ नहीं समझते। वे कार्य के अभाव अर्थात् आलस्य के साथ समय बिताने को सुख का साधन समझते हैं। यह बड़ी भारी भूल है। कहा जाता है कि उद्योगरहित और कार्यहीन मनुष्यों का मन शैतान का निवास—स्थान होता है। भारतवर्ष के एक बड़े अधिकारी को यह आज्ञा मिली कि “अब तुम्हारे नौकरी के दिन पूरे हो गये। तुमने ईमानदारी से काम किया, इसके उपलक्ष्य में तुम्हें पेंशन मिला करेगी।” जब उसे यह आज्ञा मिली तब वह बहुत ही खुश हुआ। खुशी इस बात की थी कि उसे अब काम नहीं करना पड़ेगा और मजे में दिन काटने का अवसर मिला करेगा। उसने खुशी के आवेश में अपने एक मित्र को यह पत्र लिख भेजा, “अब मैंने दिन—भर के झंझटों से छुट्टी पाई। दिन—रात काम करने से जी ऊब गया था। अब मुझे दस गुनी तनखाह मिले तो भी मैं काम नहीं करूँगा।” दो—चार—आठ दिन बीत जाने पर जब वह बैठे—बैठे तंग आने लगा और जब उसने देखा कि काम किए बिना आलस्यपूर्ण जीवन बड़ा ही दुःखदायी होता है, तब उसने फिर अपने उस मित्र को शोक के साथ लिखा, “भाई! मैं समझता था कि काम न करने ही में आनन्द है, परन्तु बात बिलकुल उल्टी है। अब मुझे साफ—साफ मालूम हो रहा है कि मेरा पूर्व जीवन बहुत ही उत्तम और सुखपूर्ण था। जितना ही अधिक काम करना पड़ता था, उतना ही अधिक सुख मिलता है।”

सारांश यह है कि हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहना मनुष्य के देह—धर्म के विरुद्ध है। मनुष्य का मन पनचक्की के समान है। जब उसमें गेहूँ डालते जाओगे तब वह गेहूँ को पीसकर आटा बना

देगी। परन्तु जब उसमें गेहूँ न डालोगे तब वह स्वयं अपने-आपको पीसकर क्षीण बना डालेगी।

जब यह निर्विवाद सिद्ध है कि काम करना अथवा आलस्यपूर्ण जीवन बिता देना देह-धर्म के विरुद्ध है, तब हमारा यही कर्तव्य है कि हम कुछ-न-कुछ अच्छा व्यवसाय अपने लिए पसन्द करें। यह व्यवसाय हमारे मन, इच्छा, कार्यशक्ति और स्वभाव के अनुकूल होना चाहिए। स्वाभाविक प्रकृति के प्रतिकूल व्यवसाय करने में सफलता कभी हो नहीं सकती। मनुष्य-जीवन के असफल होने के दो मुख्य कारण हैं—पहला यह कि वह कभी-कभी अपनी स्वाभाविक कार्य-शक्ति के विरुद्ध व्यवसाय में लग जाता है। दूसरा कारण यह है कि मनुष्य व्यवसाय-कुशल हुए बिना ही अपने कार्यों को शुरू कर देता है, परन्तु जब तक कार्यकुशलता और कामचलाऊ अनुभव न हो जाए तब तक सहसा कोई काम शुरू न करना चाहिए। यह सच है कि अनुभव और कुशलता जल्द नहीं आती, परन्तु इन्हें दृष्टि के बाहर जाने नहीं देना चाहिए।

ऊपर कहा जा चुका है कि जीवन-संग्राम में मनुष्य अमुक दो कारणों से अकृतकार्य होता है, परन्तु हमारे भारतवर्ष में एक और तीसरा कारण देखा जाता है। इस देश के पढ़े-लिखे शिक्षित लोग मानसिक और मौखिक कार्य करना अधिक पसन्द करते हैं। लोगों में शारीरिक व्यवसायों से एक प्रकार की घृणा उत्पन्न हो गई है। ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। एक मनुष्य आठ रुपये माहवार पर म्युनिसिपल नाके का मुंशी बनकर कान में कलम दबा रखने में अपने जीवन की सार्थकता समझता है, परन्तु अन्य शारीरिक कार्य करके अधिक द्रव्य पैदा करने में उसे लज्जा

मालूम होती है। भारतवर्ष में बाबू साहिबी की बीमारी दिनोंदिन बढ़ रही है और शोक के साथ कहना पड़ता है कि यदि किसी ने इस मर्ज की दवा शीघ्र न निकाली तो यह बीमारी असाध्य हो जाएगी। स्मरण रहे कि शारीरिक श्रम करने से और अपनी कर्मेन्द्रियों को किसी उपयोगी कार्य में लगा देने से ही शिक्षित समाज अपने देश के लिए आदर्श हो सकता है। विद्यार्थियों के लिए उचित है कि वे इस बात पर ध्यान दें और शारीरिक श्रम से घृणा न करें।

जब हम अपनी रूचि और प्रवृत्ति के अनुसार कोई व्यवसाय चुन लें तब फिर हमें उसमें हजारों बाधाओं के होने पर भी लगे रहना चाहिए। बहुधा युवावस्था में कुछ कष्ट, उदासीनता अथवा अकृतकार्यता होने से युवकगण हताश होकर अपने इच्छित व्यवसाय को यह समझकर छोड़ देते हैं कि कदाचित् वे किसी दूसरे व्यवसाय में लग जाने से अधिक सफलीभूत होंगे, परन्तु यह बड़ी भारी भूल है। हमें सर्वदा यही उचित है कि हम जिस धन्धे को अपने लिए एक बार चुन लें, फिर उसे कभी न छोड़ें, उसी में दृढ़तापूर्वक लगे रहें। जीवन—संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए अपनी प्रवृत्तियों के अनुकूल व्यवसाय चुनने की जितनी जरूरत है, उससे बढ़कर उसमें दृढ़तापूर्वक लगे रहने की भी है। कठिनाइयों के उपस्थित होने पर यह विचार करना मूर्खता है कि हम किसी दूसरे व्यवसाय में अधिक सफल हुए होते। जब अपने व्यवसाय को छोड़कर दूसरे धन्धों में लगने के लिए जी ललचाता है तब उस दूसरे धन्धे के केवल गुण और लाभ ही दृष्टिगत हुआ करते हैं और अपने धन्धे के केवल दोष और हानि, पर ऐसा होना सम्भव नहीं है। हम जिस गुलाब को देखेंगे, उसी में काँटे मिल सकते हैं। इसलिए अपने एक बार के दृढ़ निश्चित व्यवसाय को बिना समझे—बूझे कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

हमें किसी व्यवसाय के चुनने अथवा छोड़ने में चंचलता अथवा जल्दी नहीं करनी चाहिए। कभी-कभी जब मनुष्य अपने व्यवसाय में हजार प्रयत्न करने पर भी सफल नहीं होता तब उसे व्यवसाय बदलकर दूसरा चुनने की आवश्यकता अवश्य होती है। परन्तु इससे यह भी सिद्ध होता है कि उसने व्यवसाय को चुनने में बड़ी गलती की। ऐसी गलतियाँ कई कारणों से—बुरी संगति, अचानक घटना, माता-पिता की बुद्धिहीनता अथवा अधूरी शिक्षा के कारण बहुधा हुआ करती है। परन्तु युवावस्था में मन बहुत चंचल रहता है। किसी काम को खूब सोच-समझकर करना चाहिए। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि अनेक युवक उस कार्य को करते हैं जिसमें वे कभी सफल नहीं हो सकते और कुछ युवक भ्रमवश उस व्यवसाय को छोड़ बैठते हैं जिसमें थोड़े ही अधिक परिश्रम से वे सफलीभूत हो गए होते। ध्यान रखने की बात है कि जो व्यवसाय किसी भी दृष्टि से जितना ही अधिक अच्छा होगा, उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए उतना ही अधिक समय और परिश्रम भी लगेगा। हाँ, जिस राह से हम जा रहे हैं, उस राह में यदि सिंह मिल जाए तो हमारा यह सोचना बिलकुल स्वाभाविक होगा कि उस रास्ते के सिवा संसार में अन्य किसी रास्ते में सिंह आ ही नहीं सकता, परन्तु बिना परिश्रम के कुछ भी नहीं मिल सकता। इसलिए बाधाओं का सामना करते हुए अपने एक बार के चुने हुए व्यवसाय में दृढ़तापूर्वक लगे रहना श्रेयस्कर है।

बहुत-से युवक अपनी योग्यता की डींग हाँके बिना सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहा करते हैं कि यदि हम उस व्यवसाय में न होते तो बहुत ही यशस्वी होते। उनका ईश्वर के सामने यही रोना रहता है कि उसने हमें अपनी अपूर्व योग्यता को प्रकाशित करने का अवसर ही न दिया। अपने साथियों के समक्ष अपनी योग्यता

के विषय में व्याख्यान देकर ऐसे युवक कहा करते हैं कि हमें अपनी योग्यता के विषय में व्याख्यान देकर ऐसे युवक कहा करते हैं कि हमें अपनी योग्यता को बर्बाद करना पड़ रहा है, ग्रहदशा अच्छी नहीं है, साधन और संयोग प्रतिकूल हैं, इत्यादि। परन्तु यह युवकों की बड़ी भारी भूल है। इस तरह के प्रलापों के कारण दुनिया उन्हें आत्म-प्रशंसक समझकर उनका तिरस्कार करेगी; क्योंकि दुनिया की तो आज तक यही समझ है कि जिसमें थोड़ी-बहुत आश्चर्यजनक योग्यता विद्यमान है, वह मनुष्य उसे किसी-न-किसी तरह से संसार को अवश्य ही दिखा देगा। इसलिए अपने व्यवसाय की तुच्छता की शिकायत करते रहने के बदले उसे उच्च और कुलीन बनाने के प्रयत्न में मनोयोगपूर्वक लगे रहने से अधिक लाभ और ख्याति की सम्भावना है। इस व्यवसाय को तुम अपने किसी पाप का प्रायश्चित्त मत समझो, केवल कर्तव्य समझकर उसके सम्पादन में दत्तचित्त हो जाओ, फिर सफलता दूर नहीं रहेगी।

• • • • •